

2

140

140



वि
५१३
~~२६४~~
४५



५५
२५० * श्रीः *

→* हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला *←

५५
४५ १३७
—*—

व्याकरणशास्त्रि-प्रथमखण्डोपयोगि-

सोत्तरा-स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरी

पण्डित श्रीविद्वेदवरदा शास्त्रिणा

सम्पादिता ।



प्रकाशक—

चौखम्बा-संस्कृत-पुस्तकालय

बनारस सिटी ।

वि. सं. १९९८] १९४१ [मूल्य ६ आणकाः
[अस्य ग्रन्थस्य सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकेन स्वायत्तीकृताः]

“श्रीकोष”

(हिन्दी से संस्कृत जेबी कोष)

प्रिय छात्र गण !

ये तो कोश ग्रंथों में संस्कृत से हिन्दी के तो कई एक कोष प्रदेखने में आते हैं मगर विद्यार्थियों के उपयुक्त हिन्दी से संस्कृत अनुवाद करने के लिए कोई भी हिन्दी-संस्कृत कोश प्रकाशित न हुआ था । इस भारी न्यूनता को दूर करने के लिए हमने “श्रीकोष (हिन्दी से संस्कृत जेबी कोष) का प्रकाशन किया है इस “श्रीकोष” के द्वारा आपको एक शब्द के कई अर्थ एवं पर्याय पर्यायरूपेण मिल सकेंगे । इसमें लिङ्ग, क्रिया, क्रियाविशेषण, संज्ञा, भाववाचकसंज्ञा आदि का निर्देश तथा वर्गों के पहले आए हुए शब्दों के “हिन्दी” में भी बना दिए गए हैं जिनसे जनसाधारण को समुचितरूप से शब्दों का ज्ञान हो जाय । ‘एकसरे, कुर्सी, टेबुल, आलमारी, ग्युन्सपलिटी, कचहरी, जज, कोतवाल, थानेदार’ आदि वर्तमान चलते-फिरते शब्दों की ओर (जिनकी संस्कृत बनाने में लोगों को अत्यन्त कठिनाई पड़ती थी) विशेष ध्यान दिया गया । यह ‘श्रीकोष’ संस्कृत तथा अंग्रेजी पढ़ने वाले छात्रों का समान से ध्यान रख कर ही तैयार किया गया है । इसलिए ‘श्रीकोष’ के बड़े काम की पुस्तक हो गयी है । अब संस्कृत तथा अंग्रेजी छात्रों को लेशमात्र भी हताश होने की आवश्यकता नहीं । आन्तरिक इस जेबी “श्रीकोष” के द्वारा अनुवाद में सफलता प्राप्त कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाइए ।

मूल्य

हे छात्रजन ! यदि चाहते, अनुवाद में उत्तीर्णता,

‘श्रीकोष’ से करिये तुरत, व्युत्पत्ति की विस्तीर्णता ।

श्रीकोष वालों से यथा, दारिद्र्य डरता है सदा,

‘श्रीकोष’ वालों से तथा, अज्ञान भगता सर्वदा ॥

॥ श्रीः ॥

॥ हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला ॥

५
४५

१३७

व्याकरणशास्त्रि-प्रथमखण्डोपयोगि-

सोत्तरा-स्वरवैदिकप्रश्नोत्तरी ।

पण्डित श्रीविश्वेश्वरज्ञा शास्त्रिणा

सम्पादिता

PUBLISHED BY

JAYA KRISHNA DĀS HARI DĀS GUPTA

The Chowkhamba Sanskrit Series Office,

Benares City.

1941.

[*All Rights Reserved by the Publisher's.*]

प्रशंसापत्रम्

अथेयं १६२५ ई० वर्षमारभ्य ४० ई० वर्षपर्यन्तं स्वरवैदिकप्रक्रियायोः प्रश्नोत्तरी श्रीविश्वेश्वरभाशर्मविरचिता तत्त्वबोधिनीशेखरादिग्रन्थं गुरुवचनञ्च समाश्रित्य निःसन्दिग्धं महता प्रयासेनेति साधु शिष्योपकाराय कल्पते इति ।

१८-१२-४०

}

प्रमाणयति—
बालबोधमिश्रः
सूर्यनारायण शुक्लश्च

विदाङ्गवन्तु समे विद्वांसो यदियं प्रश्नोत्तरी स्वरवैदिकप्रक्रियाजिज्ञासूनां कृते महोपकारिणी यतः स्वरचिह्नानि च तत्तत्स्थले साधुतया प्रदृश्यं प्रकाशितेति ।

२०/१२/४०

}

मार्तण्डशास्त्री

स्वरवैदिक-प्रश्नोत्तराणां

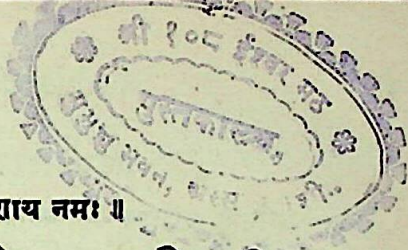
विषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः | पृ० | विषयाः | पृ० | विषयाः | पृ० |
|--------------------------|-----|----------------------|------------|--------------------------|-------|
| अकारणवैष्टिकिकम् | २७ | अनुस्वारे विवृत्याम् | ५२ | आवसथः | २२ |
| अक्रन्नुपासः | ४१ | अनुस्वारो विसर्गश्च | ६१ | आसुतिं करिष्ठः | १५ |
| अक्षण्वन्तः | ५६ | अन्तश्च तवैयुगपत् | ३४ | आहवनीये | ३५ |
| अक्षद्युवा | २५ | अपलुपं नाशकत् | ६९ | ओजस्या तनूः | ६९ |
| अगनाद्द्व | १६ | अब्जाः | ४१ | इन्धानः | २१ |
| अग्निम् | २२ | अभ्यस्तानामादिः | ४१६ | इन्धे राजा | ११ |
| अग्निमीले | ३ | अभ्र आं अपः | ४२ | ईड्यः | २१३९ |
| अग्निमीले पुरोहितम् | ५२ | अयोगवाहाः | ४४, ५३, ६१ | ईश्वरो विलिखः | ३८ |
| अङ्ग इत्यादौ च | ६९ | अयं वावहस्त आसीत् | १२ | ईषा अक्षो हिरण्ययः | ३३ |
| अङ्गिरस्वत् | १० | अयं सो अध्वरः | ५५ | ईषान्तस्य हयादे० | ४७ |
| आग्नेचित् भायात् | ६९ | अवग्रहः | ३४ | इष्टानं देवान् | ४२ |
| अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् | २५ | अवयाः | २९ | उक्थशासः | ६३ |
| अग्निः सोमं प्रवो० | ५३ | अश्वाघस्यादिति | ७० | उच्चारपदेन प्रस्थितः | ७० |
| अघायुः | ४६ | अश्वायन्तो मघवन् | ३३ | उत्तरपदद्वन्द्वौ सर्वे च | १३ |
| अचोऽस्पृष्टेति | ४९ | अष्टाभिः | ४३ | उदात्तयणो हल्पूर्वात् | २१ |
| अतीक्षणम् | ९ | अस्मे प्रयन्धि | ३३ | उदात्तस्वरितपरस्य | ३९ |
| अत्यङ्कुशो नागः | ७२ | अहरहर्जायते | ११ | उदात्तस्वरितयोर्यणः | ३० |
| अद्य ममार | ३७ | अहो कटं करिष्यति | ९ | उद्दालकपुष्पमञ्जिका | ५७ |
| अद्यामावास्येथा | ६९ | आगच्छ देव ग्रामम् | २ | उपकूलम् | ३११४७ |
| अधः स्विदासीत् | ६० | आग्नेयः | ३१ | उपग्रहः | ३०१६५ |
| अधीश्वमाणवक पुरा | १३ | आचार्योपसर्जन० | ३९ | उपसंवादाऽऽशङ्कयोश्च | ६३ |
| अध्ययनपुण्यम् | ४४ | आतोऽटिनित्यम् | ४ | उपप्रयन्तो अध्वरम् | ३८ |
| अनसन्तान्पुंसका० | ५१ | आप्राद्यावा | ५० | उपमानं शब्दार्थप्र० | ४४ |
| अनुज्येष्ठ | ९ | आम् पचसि देवदत्त | १२ | उपत्वाने दिवे दिवे | २५ |
| अनुपुरुषः | ४० | आर्यकुमारः | २१ | उपशालम् | ६५ |
| अनुसखा स यूध्यः | १५ | आर्य ब्राह्मणः | ४७ | उपाग्न्यधीयान० | ४२ |

| | | | | | |
|--------------------------|-------|-----------------------|------|--------------------------|-------|
| उभयाविनम् | २३ | गमनज्येष्ठम् | ७१ | तयोर्दाहिलौ च च्छ० | ४२ |
| उभयतोदः प्रतिगृह्णाति | ६ | गृभाय जिह्वया मधु | ३२ | तवैचान्तश्च युगपत् | ६० |
| उभेवनस्पत्यादिषु | ४२ | गृष्णामिते | १८ | तास्यनुदात्ते | ७१ |
| उष्ट्रक्रोशी | ४७ | गृष्टिः ससूव स्थविरम् | ६६ | तिष्ठि चोदात्तवति | ३१ |
| ऊष्मणोऽष्टविधा० | ५८।७४ | गेहम् | १७ | तिष्ठो गोत्रादीनि० | ७२ |
| ऋकता गणेन | २८ | गोपालः | ३६ | तित्तिरिः | ११ |
| ऋचितुनुद्यमक्षुतब् | ५७ | गोत्रान्ते वासिमाणव० | ६१ | तिलाः | ३१ |
| ऋत्विक् | १६ | गोलवणम् | ३९ | तुभ्यम् | ६१ |
| एकक्षुत्तिर्नाम | ३० | गोहितम् | २१ | तुचं सूक्तम् | ४१ |
| एषस्य भानुः | ४६ | गौरमुखः | ४४ | तेनो अवन्तु | ११ |
| कटं जातु करिष्यति | ९ | प्रसितस्कमित० | ६६ | तं प्रत्नथा | ४१ |
| कथाग्रामं न पृच्छसि | १९ | ग्रामस्य तदहः | ६६ | त्मना देवेषु | ११ |
| कथादाशेम | ३३ | घृतम् | ४३ | त्राध्वं नो देवाः | ११ |
| कनिष्कदञ्जनुपम् | २४ | घृतस्य यजते | ६९ | त्रिपादूर्ध्वः | ११ |
| कल्याणः | ४७ | चक्राणा वृष्णिम् | ३७ | त्रिभिष्ट्वम् | ३१ |
| कश्चिद्भुङ्क्ते | ३९ | चक्राजरसम् | ६९ | त्रिभिष्ट्वं देव सवितः | ६१ |
| काण्डपृष्ठः | १७ | चञ्चा | ७ | त्रिपष्टिश्चतुःषष्टिर्वा | ६१ |
| काष्ठाध्यापकः | २७ | चनो दधीत नाद्यो० | ३८ | त्वोतासः | ११ |
| किं क्रियाप्रदनेऽनुपसर्ग | ४७ | चिकीर्षकः | ३४ | दक्षिणतः शये | ४६ |
| कुमारश्रमणा | ४३ | छन्दस्यनेकमपि सा० | ६० | दक्षिणो बाहुः | ६१ |
| कुरुगार्हपतम् | ७२ | जगुरिः | ६ | ददिर्गाः | २१ |
| कुशिकालो अवस्यवः | २९ | जनीयन्तोन्वग्रहः | ६९ | दधिक्राः | ६० |
| कृषिः | ४३ | जयोऽङ्गवः | २ | दविध्वतो रश्मयः | ११ |
| कृष्णाऽजिनम् | ७१ | जागर्षित्वम् | ७ | दाण्डायनस्थलम् | ११ |
| केकयः | ५६ | जातु भोक्ष्यसे | १२ | दातवाउ | १७।३३ |
| कोलाहलः | २१ | जानता | २१ | दातवै | ५१ |
| कौजायनाः | ३६ | जाया | २१ | दातिप्रियाणि | ३२ |
| क | ४३ | जुजोपत् | २४ | ‘दाधर्ति०’ | ६५ |
| क्षत्रिया | ६६ | ज्या इयम् | १६ | दाधार यः पृथिवीम् | ५५ |
| खलव्याशा | २४ | तद्धानासामुपधानः | ६६ | दिवं सुपर्णो गत्वाय | ४१ |
| गतिकारकोपपदात्कृत् | ३६ | तन्तुवायः | १२ | दूरादागतः | २६ |
| गतिरनन्तरः | ७२ | तमसस्पारमस्य | ६० | देवमित्रः | ३१ |
| गतिर्गता | ३ | तयोर्वावचीति | ७।६३ | देवः पचतीव | १ |

| | | | | | |
|---------------------------------|-------|----------------------|-------|-----------------------|-----|
| ४१ देवयज्यायै | १४ | पटुपटुः | ३४।७० | बंहिष्ठ | ३४ |
| ६० दंवासः | ३८ | पण्यकम्बलः | १२ | बहुलं छन्दस्य० | ६० |
| १०१ देवा अदुह | ४ | पताति विद्युत् | ४१ | बहुव्रीहिकः | २७ |
| ३१ देवी वाचम् | ३ | पन्थाः | ४२ | बहिष्येषु निधिषु | १० |
| ५१ द्रवत्पाणी शुभस्पती | ११ | पपिः सोमम् | ५९ | ब्रह्मचारिणमिच्छते | ६४ |
| ११ द्वयचक्षुन्दसि | १६ | पर्यन्तः | ५२ | ब्रह्मनगरम् | ५२ |
| ३१ द्विःस्पृष्टता च | ६१ | पललम् | ५१ | ब्रह्मवाद्यम् | ५३२ |
| ६१ द्विसुवर्णधनम् | ७१ | पाणिनीयरौढीयाः | ५१ | ब्रह्मसामं भवति | ३८ |
| ४१ द्वित्रिभ्यां पादूदन्मूर्धसु | ४८ | पाणिन्युपज्ञम् | ३५ | भरता जातवेदसम् | २३ |
| ११ धिष्ववज्जम् | ६ | पाथ्यो वृषा | २९ | भार्या सौश्रुतः | ६५ |
| ४१ ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य | ३० | पितृयाणम् | ६० | भूपतिः | २६ |
| ११ नप | ३०।६५ | पीत्वी सोमस्य | २९ | भ्राष्ट्रपक्कः | ४७ |
| ११ नन्विषयस्याऽनिस० | ३४ | पुरोहितम् | ५६ | मनुवसो रु सम्बुद्धौ | ५६ |
| ११ नमो भरन्त एमसि | २४ | पूजनात् पू० | ३ | मत्स्यचूर्णम् | १२ |
| ११ न म्लेच्छित वै | ४२ | पूजनात्पूजितमनुदा० | ५७ | मद्रसविधम् | ३० |
| ११ नवपदशय्या | ६६ | पूर्णा विवष्टि | १८ | मद्रसवेशम् | ५६ |
| ११ नह भोक्ष्यसे | २७ | पूर्व्यासः | २३ | मधव्यः | १५ |
| ११ नादिन् | ६२ | पूषा अविष्टु | ५१ | मध्वाजभार | १९ |
| ११ नादी | ४० | कृत्यान्तः पाद० | २० | मनुष्वदग्ने | ३२ |
| ११ नाभा पृथिव्याः | ५५ | प्रक्षालितमुखः | ८ | मन्त्रो हीनः स्वरतः | ५३ |
| ११ निपातस्य चेति | ६१ | प्रचयः | ६५ | ममत्तु नः | ११ |
| ११ निरुपलम् | २२ | प्रजामेकां रक्षति | ९ | मरते पतिः | ५० |
| ११ निषत्तमस्य | २० | प्रण आर्युपि तारिषत् | २३ | मरुतस्तज्जुजुष्टन | ११ |
| ११ निष्टकर्मम् | २८ | प्रणङ्मर्त्यस्य | २३ | मरुद्भिरुपः | ६० |
| ११ निष्ठा च द्वयजनात् | ६३ | प्रतिजनः | २७ | मर्यः | ३९ |
| ११ नूनं कृणुतात् | १५ | प्रत्यंशुः | ४७ | मल्लग्रामः | ३१ |
| ११ नृमर्तः | ६ | प्रधौतपादाः | ५२ | मल्लिका | १७ |
| ११ नृमणाः | ६९ | प्रभ्वी | ५० | महाव्रीहिः | ३१ |
| ११ नेतराच्छन्दसि | ३० | प्रमिणन्ति व्रतानि | ५१ | मद्यम् | ४७ |
| ११ नेत्री | ५१ | प्रप्रायमग्निः | ११ | मद्यं वातः पवताम् | ७ |
| ११ न्यर्बुदम् | १७ | प्लुतावै च इदुतौ | २० | मात्रोपज्ञोपक्रमच्छा० | ६३ |
| ११ न्यूह्याः | ३४ | फलकपुरम् | २६ | मादयैते | ६४ |
| ११ पञ्चदिष्टिः | ३५ | फिदसूत्राणां पाणि० | ४८ | मान आधक् | १४ |

| | | | | | |
|--------------------------|-------|-------------------------|------|------------------------|----|
| माहिचाकरताम् | २ | विदामक्रन् | १० | सन्नतरः | |
| मोषुणः | ४६ | विभाजं नाशकत् | १४ | ससदशाक्षरद्वयान्दसः | |
| यथापचति शोभनम् | ९ | विभापोत्पुच्छे | १४ | समपादः | |
| यद्वृत्तम् | ३४ | विवृतिः | ४४ | समुद्रिया अप्सरसः | |
| यद्धितुपरं छन्दसि | ३० | विश्वकर्मा | ५७ | सर्वम् | |
| यम | ६२ | विश्व देवः | ४३ | सर्वस्य | |
| यमस्वरूपम् | ४८ | वीरुधः पारयिष्णवः | १८ | सर्वे | २१ |
| यस्येदमप्यं हविः | १९ | वृका अघायवः | १९ | साङ्काश्यसिद्धः | |
| यद्योभावप्रसन्धानम् | ४४ | वृकोदरः | ६० | सुगन्धि ते जनाः | |
| या खर्वेण पिबति तस्यै | २८ | वृत्रं हनति वृत्रहा | ३७ | सुग्रीवः | |
| याते अग्ने रक्षस्या तनूः | ५९ | वृषण्वसु | ३७ | सुवामन्त्रिते | |
| युक्तारोहि | २२ | वंशोभगीनः | ५१ | सुमङ्गलीरियं वधूः | |
| यूपदारु | ३९ | वै वावेति च | ३ | सुवीरेण | |
| यो भुङ्क्ते | ३१ | वोदवाः | ३४ | सुश्चन्द्र दस्म | |
| रङ्गः | ४५।६० | व्यत्ययो बहुलम् | १३ | सेत्पृश्निः सुम्वे | |
| रङ्गवर्णस्य लक्षणानि | ७४ | व्यसीदत | ६ | सोमः सद्यस्थं | ११ |
| रज्जुशारदम् | १२ | व्याकरणस्य वेदाङ्गत्वम् | ६७ | सोम्यो ब्राह्मणः | |
| रथीरभूत् | २९ | शकुना इवपसिम | ६ | सौवर्गः | |
| रारन्धि | ४६ | शचीपतिम् | १७ | संवत्सरीणः | |
| रुद्रहतः | ६० | शरावती | २ | स्विपन्त | ७ |
| रेवान् | ६९ | शस्त्री श्यामा | २१ | स्त्रीसभम् | |
| लघावन्ते द्वयोश्च | ३९ | शिद् | ३४ | स्वरविधौव्यञ्जनम् | |
| लोपस्त आत्मनेपदेषु | ३८ | शितिपादः | ७१ | स्वरितोऽवाऽनु० | २० |
| वर्धी वृत्रम् | ६ | शुन्धध्वं दैव्याय | ५५ | स्वाङ्गशिष्टामदन्तानां | |
| वर्चस्याः | ६४ | शृणुधी गिरः | ५९ | स्वाहा | |
| वद्वान्तरः | १७ | श्रासिन् | ६२ | हन्त कुरु | |
| वाजिनेषु | १४ | श्रासी | ४५ | हन्त प्रविश | |
| वायवे पिबत्यै | १९।४६ | सगतिरपितिङ् | १६ | हरिवो मेदिनं त्वा | |
| वारयध्वात् | ४ | सग्धिश्चमे | १८ | हिंसन्ति | |
| वात्रंघ्नमितरम् | ६३ | सतिशिष्टस्वरबलीय | ७।१६ | हेति क्षियायाम् | |
| वायम् | ७ | स तूताव | ३३ | हस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे० | |
| वास्तव्यम् | ६४ | सत्यं भोक्ष्यसे | २२ | | |



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्वरवैदिकप्रक्रियाप्रश्नोत्तरी

पार्वतीशिवयोरङ्गे मोदकाशनसंरतः ।

गणेशो विघ्नशूलघ्नो मङ्गलं तनुतात् सदा ॥ १ ॥

श्रीविश्वेश्वरविश्वविश्रुतपुरीवास्तव्यविश्वेश्वरः ।

श्रीयागेश्वरशर्मणो बुधमणोर्विख्यातकीर्तिसुतः ॥

स्वं तातश्च गुरुं सुबोधजनकं श्रीबालबोधाऽभिध-

त्त्वा वैदिकप्रक्रियास्वरभवप्रश्नोत्तरीं निर्ममे ॥ २ ॥

१४२५

१—माहिचीकरताम्, सर्वम्, जयोश्चः, ईड्यः, शरावती, एतेसूत्रोप-
न्यासपुरस्सरं, साधनीयाः ।

२—आगच्छ देव ग्रामम् प्रविश, अत्र सूत्रोपन्यासपुरस्सरं स्वरो, वर्ण-
नीयः । हेति क्षियायाम्, वै वा वेति च छन्दसि, पूजनात् पूजित-
मनुदात्तम् काष्ठादिभ्यः, गतिर्गतौ, एतानि, व्याख्याय उदाहर-
णेषु समन्वयो विधेयः ।

३—देवीम् अत्र ईकारोऽनुदात्तः उदात्तो वा, अग्निमीले, अत्र स्वरप्र-
क्रियाम् वर्णय, 'सुबामन्त्रिते पराङ्वत्स्वरे' एतस्यार्थमुदाहरणञ्च
वक्तव्यम् । 'अभ्यस्तानामादिः' अस्य कोर्थः, उदाहरणञ्च किम्,
तत्सर्वम् वाच्यम् ।

४—देवा अदुह, वार्यध्वात्, दिवम् सुपर्णो गत्वाय, एतेषु वैदिक
प्रक्रियोक्तम् कार्यम् सूत्रोपन्यासपूर्वकं वदन्तु ।

५—'आतोऽटि नित्यम्' 'छन्दसि वाप्रामोडितयोः' 'निसस्तपतावना-
सेवने' एषामुदाहरणानि तेषु समन्वयश्च वक्तव्यः ।

प्रश्नोत्तराणि—

१—माहिचीकरताम्—‘कृ’ धातोर्णिचि अनुबन्धलोपे लुङि तसि तस्य ता मादेशे च्लौ “णिश्चिदुधुभ्यः कर्तरि चङ्” इत्यनेन च्लेश्चवादेशेऽनुबन्धलोपे कृ + इ + अ + तामिति स्थिते “चङि” इति द्वित्वे अभ्यासत्वे अभ्यासकारे वृद्धौ रपरत्वे उपधाह्रस्वे “शोरनिटि” इति गेलोपेऽङागमे प्राप्ते “न माङ्योगो” इति तन्निषेधे सन्वद्धवादिकाख्ये मा हि चीकरतामित्यत्राऽदुपदेशात्परत्वेन लसार्धधातुकाऽनुदात्तत्वे कृते चङ एव स्वरे प्राप्ते “चङ्यन्यतरस्याम्” इति सूत्रे धात्वकार उदात्तः एतदभावे चङुदात्तः ।

सर्वम्—सर्व-शब्दादमि “अमिपूर्वः” इति सूत्रेण पूर्वरूपे “सर्वस्य सुपि” इति सूत्रेण सर्वशब्दस्याऽद्युदात्तत्वे सर्वमिति सिद्धम् ।

जयोऽङ्वः—जयत्यनेनेति जय इति विप्रहे ‘जि’ धातोः “एरच्” इति सूत्रेण अच् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे गुणेऽयादेशे ‘जय’ इत्यस्य प्रातिपदिकत्वे सौ रुत्वे विसर्गे ‘जयः’ इति साधुः अत्र “जयः करणम्” इति सूत्रेण जयशब्दस्याऽद्युदात्तः

ईड्यः—ईडितुं शक्य इति विप्रहे ‘ईड्’ धातोः “ऋहलोप्यत्” इति सूत्रेण ण्यत् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे ईड्य इत्यस्य प्रातिपदिकत्वे सौ रुत्वे विसर्गे “ईड्वद्वृशंसदुहां एयतः” इति सूत्रेण ‘ईड्य’ इत्यस्याऽद्युदात्तत्वे ‘ईड्यः’ इति सिद्धम् ।

शरावती—शरास्सन्त्यस्यामिति (शरावती नाम नदीति) विप्रहे शरशब्दात् “नद्यां मतुप्” इति सूत्रेण मतुपि अनुबन्धलोपे “मादुपधायाश्च मतोर्वाऽयवादिभ्यः” इति सूत्रेण मकारस्य वकारे “शरादीनाञ्च” इति सूत्रेण दीर्घे ङीपि सौ सुलोपे शरावतीत्यत्र “मतोः पूर्वमात्सञ्ज्ञायां स्त्रियाम्” इति सूत्रेण मतोः पूर्वाकारस्योदात्तत्वे ‘शरावती’ इति सिद्धम् ।

२—आगच्छ देव ग्रामं प्रविशं—अत्र “लोट च” इति सूत्रेण अनुदात्तत्वस्य निषेधे प्राप्ते तम्प्रवाच्य “विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम्” इति वैकल्पिकाऽनुदात्तत्वे तत्सिद्धयति । अत्र विशेषेति पक्षे निहतं पक्षे शप्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तम् यदाऽन्तोदात्तन्तदा “तिङि चोदात्तवति” । इति सूत्रेण गतेर्निघातः ।

“हेति क्षियायाम्”—ह्युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता स्यात् क्षियायाम् धर्मव्यतिक्रमे इत्यर्थः उदाहरणञ्चात्र ‘स्वयं ह रथेन याति ३ उपाध्यायं

पदार्तिं गमयति' । उपाध्याये पदातौ गच्छति सति शिष्यस्य रथेन गमनं प्रति-
षिद्धमिति धर्मव्यतिक्रमः ।

“वै वा वेति च छन्दसि”—आभ्यां युष्मं प्रथमं तिङन्तमनुदात्तं वा स्या-
च्छन्दसि । वै स्फुटार्थे क्षमायाश्च वाव प्रसिद्धौ स्फुटार्थे च । उदाहरणम्—‘अहवै’
‘देवानामासीत्’, ‘अयं वा व हस्त आसीत्’ ।

“पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः”—पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः
पूजितवचनमनुदात्तं स्यात् । उदाहरणम् ‘काष्ठाध्यापकः’ काष्ठादयोऽद्भुतप-
र्यायाः सन्तः पूजनवचनाः भवन्ति ।

“गतिर्गतौ”—गतौ गतिरनुदात्तः स्यादित्यर्थः । अभ्युद्धरतीत्युदा रणम् ।

३—‘देवीं वाचम्’—देव शब्दस्याच् प्रत्ययान्तत्वात् “चित्” इति सूत्रे-
णान्तोदात्तत्वे पचादिषु ‘देवट्’ इति पाठात् “टिङ्ढाणञ्झयसज्झनञ्मा-
ञ्चत्तयपूठकठञ्कञ्करपः” इति सूत्रेण ङीप् तस्य “अनुदात्तौ सुप्पितौ”
इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे “यस्येति च” इति सूत्रेणाकारस्य लोपे “अनुदात्तस्य
च यत्रोदात्तलोपः” इति सूत्रेण ङीवुदात्तः ।

ननु “अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः” इदं व्यर्थम् ननुदात्ते स्वरिते
वा परे उदात्तलोपोऽस्ति । नच प्रसज्यते इति प्रासङ्गः अत्र कर्मणि घञ् “कर्षा-
त्वतो घञोऽन्त उदात्तः” इत्यन्तोदात्तत्वे “उपसर्गस्य घञमनुस्ये बहुल-
म्” इत्युपसर्गस्य दीर्घे तं बहतीति “प्राग्घिताद्यत्” इति सूत्रेण यति तित्वा-
त्स्वरिते तस्मिन् परे “यस्येति च” इति लोपः । एवञ्चात्र स्वरिते परे उदात्तलोपो-
ऽस्त्येवेति वाच्यम् । स्वरिते हि विधीयमाने परिशिष्टम् “अनुदात्तं पदमेकव-
र्जम्” इत्यनुदात्तं तत्कुत उदात्तलोप इति चेत् सत्यम्—‘मा हि धुन्नाताम्’ इत्यत्र
दुर्हेर्लुङात्मनेपदमातां “शल इगुपधादनिटः कसः” इति च्लेः कसः । आता-
मित्यस्य “तास्यनुदात्तेनङिदुपदेशलसार्वधातुकमनुदात्तमनङ्ङिङोः”
इति लसार्वधातुकाऽनुदात्तत्वं कसः प्रत्ययस्वरेणोदात्तः “कसस्याचि” इति सूत्रे-
णाल्लोपः अत्र “कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः” इत्यत अन्तः इत्यधिकारादन्त्य-
स्योदात्तत्वं स्यात् सति तु तस्मिन्नादेर्भवतीत्यलं पल्लवितेन ।

अग्निमीले-अग्नि शब्दः “फिषोन्त उदात्तः” इति सूत्रेणायवा “जित-
त्यादिर्नित्यम्” इति सूत्रेणान्तोदात्तः । अम् सुप्त्वात् “अनुदात्तौ सुप्पितौ”

इति सूत्रेणाऽनुदात्तः “अमि पूर्वः” इति सूत्रकृतैकादेशः “एकादेश उदात्तेनोदात्तः” इत्यनेनोदात्तः । ईळे तु ‘ईड’-स्तुतौ लटि उत्तमपुरुषैकवचनम् प्रातिशाख्येन डस्य लत्वे “तिङ्ङतिङः” इति सूत्रेणातिङन्तादग्निशब्दात् परस्य ‘ईळे’ शब्दस्य निघातः “उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः” इति ईकारस्य स्वरितत्वे ‘अमिमीळे’ इति । नच मकारेण व्यवधानम् ‘स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्’ इति परिभाषणात् । ननु “तिट्स्वरितं” इत्यस्यानन्तरमिदं वक्तव्यमेवञ्च स्वरितग्रहणं न कर्तव्यं भवतीत्याशङ्क्याह मूलेऽस्याप्यसिद्धत्वाच्छेषनिघातो न । यदि तत्र क्रियते “अनुदात्तं पदमेकवर्जम्” इत्येतप्रवर्तते इह प्रकरणे न प्रवर्तते स्वरितस्याऽसिद्धत्वात् । तेन द्वयोरप्युदात्तस्वरितयोः श्रवणं सिद्धमिति शम् ।

“सुवामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे”—सुवन्तमामन्त्रिते परे परस्याङ्गवत्स्यात् स्वरे कर्तव्ये उदाहरणञ्चात्र । ‘द्रवत्पाणी शुभस्पती’ ।

अभ्यस्तानामादिः—अनिटथजदौ लसार्वाधातुके परेऽभ्यस्तानामादिरुदात्तः । उदाहरणञ्चात्र । ‘ये ददति प्रिया वसु’ । ‘दधाना इन्द्रे’ ।

४—‘देवा अदुह’—‘दुह’ धातौर्लङि तस्य क्षि आदेशे “आत्मनेपदेष्वनतः” इति सूत्रेण ङस्यादादेशेऽङागमे “बहुलं छन्दास” इति ङागमेऽनुबन्धलोपे “लोपस्त आत्मनेपदेषु” इति सूत्रेण तकारस्य लोपे (द्वयोरकारयोः) “अतो गुणे” इति पररूपे ‘अदुह’ इति सिद्धयति । लोके ‘अदुहत’ इति बोध्यम् ।

‘वारयध्वात्’—‘वृज’-धातोर्णिच्यनुबन्धलोपे वृद्धौ रपरत्वे वारि इत्यस्य धातुत्वे लोटि तस्य ध्वमादेशे शपि अनुबन्धलोपे गुणेऽयादेशे वारयध्वमिति जावे “ध्वमो ध्वात्” इति सूत्रेण ध्वमो ध्वादादेशे ‘वारयध्वात्’ इति सिद्धम् लोके ‘वारयध्वमि’ति बोध्यम् ।

‘दिवम् सुपर्णो गत्वाय’—‘गम्’ धातोः क्त्वा प्रत्यये “अनुदात्तोपदेशचनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलिङ्किति” इत्यनुनासिकलोपे “क्त्वायक्” इति क्त्वः यगागमेऽनुबन्धलोपे ‘गत्वाय’ इति भवति लोके गत्वेति ज्ञेयम् ।

५—‘आतोऽटि नित्यम्’—अटि परतो रोः पूर्वस्थातः स्थाने नित्यमनुनासिकः स्यात् । ‘मह्यँ इन्द्रः’ इत्यत्र रोः पूर्वस्थातः स्थानेऽनुनासिकः तैत्तिरीयानामते तु सूत्रफलं चिन्त्यम् ।

“छन्दसि वाऽप्राप्तेऽडितयोः”—‘अग्ने त्रातः ऋतस्कविः’ ‘गिरिर्न विश्वतरुपृथुः’ अत्र विसर्गस्य सकारादेशः ।

निसस्तपतावनासेवने—निष्ठं रक्षो निष्ठता अरातयः । अत्र सकारस्य मूर्धन्यादेशः ।

१४२६

१—ब्रह्मवाद्यम्, जगुरिः, उभयतोदतः प्रतिगृह्णाणि, नू मर्तः, शकुना इव पक्षिम, वर्धो वृत्रम्, धिष्व वज्रम्, व्यसीदत्, एषां लौकिकरूपप्रदर्शनपुरस्सरं साधनप्रकारो दर्शनीयः ।

२—स्वपन्ति, चञ्चा, वार्यम्, जागर्षि त्वम्, मह्यं वातः पवताम्, एषु स्वरविशेषान् प्रदर्श्य सति शिष्टस्वरस्य बलीयस्त्वे मूलं सोदाहरणं निर्दिश्यताम् ।

३—तास्यनुदात्तेदिति सूत्रं सोदाहरणप्रत्युदाहरणं व्याख्याय ‘तयोर्वावचीति’ सूत्रं सप्रयोजनं व्याख्यायताम् ।

४—प्रक्षालितमुखः, अतीक्ष्णम्, दाण्डायनस्थलम्, अनुज्येष्ठम्, एषु स्वरविधायकानि सूत्राणि बाध्यस्वरनिर्देशं विलिख्यन्ताम् ।

५—यथा पचति शोभनम्, अहो कटं करिष्यति, कटं जातु करिष्यसि देव पचतीव, प्रजामेकां रक्षन्ति, हन्त कुरु, एषु कस्कः स्वरः ।

प्रश्नोत्तराणि—

१—ब्रह्मवाद्यम्—अत्र “छन्दसि निष्टक्यं देवहूयप्रणीयोऽनीयोऽच्छिष्यमर्यस्तर्थाध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचार्यपृष्ठानि” इति सूत्रेण निपातनात् ब्रह्मणि वदेर्ष्यति अनुबन्धलोपे आद्यचो वृद्धौ णिलोपे सौ अमि पूर्वरूपे ‘ब्रह्मवाद्यम्’ इति लोके तु “वदः सुपि क्यप् च” इति क्यप् ण्यतौ तेन ‘ब्रह्मोद्यम्’ ‘ब्रह्मवद्यम्’ इति रूपद्वयम् ।

जगुरिः—‘गृ’ धातोः “आहूगमहनजनः किकिनौ लिट् च” कि प्रत्यये लिङ्वद्भावे द्वित्वात्परत्वाद् “बहुलं छन्दसि” इत्युत्वे प्राप्ते “द्विर्वचनेऽचि” इति निषेधादुत्वाऽभावे द्वित्वे “उरत” इति सूत्रेणात्वे रपरे “हलादिः शेषः” इति रेफस्य लोपे “अभ्यासे चर्च” इति जश्त्वे जगृ + इ इति स्थिते “बहुलं छन्दसि” इति उत्तरस्योत्वे रपरे ‘जगुरि’ इत्यस्मात् सौ रुत्वे विसर्गे ‘जगुरिः’

मूर्धन्याऽभावपक्षे 'व्यसीदत्' इति सिद्धम् लोके तु 'व्यशीदत्' इत्येकमेव रूपं भवतीति बोध्यम् ।

२—स्वपन्ति—स्वपन्तीत्यत्र "स्वपादिर्हिसामच्यनिटि" इति सूत्रेण लसार्धधातुकपरे वैकल्पिक आद्युदात्तो भवति तक्षे प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तता ।

चञ्चा—अत्र "संज्ञायामुपमानम्" इति सूत्रेण आद्युदात्तः ।

वार्यम्—अत्र "ईडवन्दवृशंसदुहां पयतः" इति सूत्रेणाद्युदात्तः ।

मह्यं वातः पवताम्—अत्र "ङयि च" इति सूत्रेण मह्यमित्यत्र ङे परे आद्युदात्तः ।

जागर्षि त्वम्—इत्यत्र "भीहोभृहुमदजनधनदरेद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्वं पिति" इति सूत्रेण लसार्धधातुके परे प्रत्ययात्पूर्वस्योदात्तत्वम् । तेन स्वरविधौ सप्तम्यास्तदन्तत्त्वज्ञापनात् लिदन्तस्य स्वरो न शङ्कनीयः ।

सतिशिष्टस्वरवलीयस्त्वमिति—यो हि यस्मिन् सति शिष्यते स शिष्टः तस्य बाधको भवतीत्यर्थः । एतच्च सतिशिष्टस्य बाधकत्वं न्यायसिद्धम् । तथा हि उदात्तस्वरितविधिभिरेकवाक्यतामापन्नयाऽनया शेषनिघातः क्रियते, तत्रोत्सर्गस्यापवादस्य वा चरमा या प्राप्तिस्तत्रास्या उपस्थाने पूर्वा प्रवृत्तिर्बाध्यते । तद्यथा 'औपगवत्वम्' इत्यत्राण् प्रत्यये त्वप्रत्यये च "आद्युदात्तश्च" इति प्रवर्तमानं स्वस्यैव प्रथमप्रवृत्तिं बाधते द्वितीयप्रवृत्त्या लक्ष्यं परिनिष्ठापयतीति दिक् । 'गोपायतं नः' ।

३—"तास्यनुदात्तेऽन्दिदुपदेशाल्लसार्धधातुकमनुदात्तमन्दिदोः" इति सूत्रस्वरूपम् । तास्यादीनां समाहारद्वन्द्वः उपदेशग्रहणं सम्भवव्यभिचाराभ्यां ङिददभ्यां सम्बद्धयते, न तु तास्यनुदात्तेदभ्याम् । ङिदिति कर्मधारयः । उपदिश्यते इति उपदेशः । तस्याकारेण ङिता च विशेषणात्तदन्तविधिः तथा च सूत्रार्थः । तासेरनुदात्तेतो ङिदुपदेशादकारान्तोपदेशाच्च परं लसार्धधातुकमनुदात्तं स्यात् ङिदौ वर्जयित्वा । उदाहरणानि । तासि कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः, अनुदात्तेत-, य आस्ते, ङितः अभिचष्टे अनृतेभिः अदुपदेशात्, 'पुरुषुजा चनस्यतम्, 'वर्धमानं स्वे दमे । प्रत्युदाहरणानि । तास्यादिभ्यः किम्, 'अभिवृधे गृणीतः, उपदेशग्रहणात् नेह 'हतो वृत्राण्यार्या' लग्नग्रहणं किम् कतीह निघ्नानाः सार्धधातुके किम् शिश्ये अन्दिदोः किम् हुते । यदधीते ॥

तयोर्वावचीति—ननु "इको यणचि" इत्यनेनैव सिद्धे लक्ष्ये "तयो-

ध्वाविचि” इति सूत्रं व्यर्थमिति चेन्न इदुतोरसिद्धत्वेनास्यावश्यकत्वात् न च ‘सिद्धः प्लुतः स्वरसन्धिषु’ कथं ज्ञायते प्लुतप्रगृह्या अचीति प्रकृतिभावविधानात् यस्य विकारः प्राप्तः तस्य प्रकृतिभावो विधेयः प्लुतस्यासिद्धत्वेन तस्य स्वरसन्ध्याख्ये विकारः प्राप्नोति । अस्तु प्लुतः सिद्धः किमायातमिदुतोः उच्यते प्लुतप्रकर्तयत्कार्यं तत्स्वरसन्धिषु सिद्धमिति सामान्येन ज्ञापकमाश्रयिष्यते ततश्चेदुतोरसिद्धत्वात्सिद्ध एव यणादेशः किमर्थमिदमिति वाच्यम् सवर्णदीर्घत्वस्य शाकल्यस्य च निवृत्त्यर्थमस्यावश्यकत्वात् । यदीदं नोच्येत अगना ३ इ इन्द्रम् पटा । उ उदकमित्यत्र षाष्टिकं यणादेशं बाधित्वा सवर्णदीर्घः स्यात् । अगना ३ यात्यादौ च “इको स्रवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च” इति प्रकृतिभावः स्यात्तद्व्यवधानार्थमिदं वक्तव्यमेव । ननु च तन्निवृत्तये यनान्तरमस्ति किं पुनस्तत्प्लुतपूर्वस्य यणादेशो वक्तव्यः सवर्णदीर्घनिवृत्त्यर्थः शाकलनिवृत्त्यर्थश्च तच्चावश्यं वक्तव्यं य इ प्लुतपूर्वः न च प्लुतविकारः भो ३ इन्द्र भोइयिन्द्रं गायतीति भोशब्दस्य छान्दस्य प्लुतः ततः परस्येकारस्य निपातत्वात् प्रकृतिभावे प्राप्ते तम्प्रबाध्य यणादेशः तदेतस्यावश्यं कर्तव्यत्वे तेनैव यणा सिद्धे पुनरपि व्यर्थमेवेति चेन्न ययोरसिद्धतादुदात्तस्वरितयोर्यणःस्वरितोऽनुदात्तस्येत्यस्य बाधनार्थमस्याऽवश्यकत्वात् ।

तथा चोक्तं वृत्तिकृता—

किन्तु यणा भवतीह न सिद्धं ध्वाविदुतोर्यदयं विदधाति ॥

तौ च मम स्वरसन्धिषु सिद्धौ शाकलदीर्घविधौ तु निवर्त्यौ ॥ १ ॥

इक् च यदा भवति प्लुतपूर्वस्तस्य यणं विदधात्यपवाच्यम् ॥

तेन तयोश्च न शाकलदीर्घौ यणस्वरबाधनमेव तु हेतुः ॥ २ ॥

अस्यायमर्थः—“इको यणचि” इति यणादेशेन किं रूपं प्रसिद्धयति यतोऽयमाचार्य्य इदुतोर्ध्वौ विदधाति तौ चेदुतौ स्वरसन्धिषु सिद्धौ ममेति सूत्रकारेणैकीभूतस्य वचनम्, एवं चोदिते परिहरति “शाकलदीर्घविधौ तु निवर्त्यौ” इति पुनश्चोदयति इक् च यदेति वार्तिककारोऽपि इक्ः प्लुतपूर्वस्य यणं विदधाति स च प्रकृतिभावस्यैव शाकलदीर्घविध्योरपि अपवादः । ततश्च तेनैव यणा एतयोरपि इदुतोः शाकलदीर्घौ न भविष्यति इति नार्थ एतेन परिहरति ‘यणस्वरेति’ यणस्वरबाधनार्थमेव हेतुः सूत्रारम्भस्येति दिक् ।

४—प्रक्षालितमुखः—अत्र “निष्ठोपमानादन्यतरस्याम्” इति सूत्रेण

वैकल्पिकान्तोदात्तत्वे प्रक्षालितमुख इति पक्षे निष्ठोपसर्ग इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् ।
प्रक्षालितं मुखं येन यस्य वेति विग्रहः ।

अतीक्ष्णम्—इत्यत्र “विभाषा तृन्नन्तीक्ष्णशुचिषु” इति सूत्रेण वैक-
ल्पिकान्तोदात्तत्वे “अतीक्ष्णम्” इति न तीक्ष्णमिति विग्रहः पक्षे नित्यान्तोदात्तः
अशुचिपक्षे अव्ययस्वरः ।

दारुणायनस्थलम्—अत्र प्रयोगे “कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम्”
इति सूत्रेणाऽनुदात्तः ।

अनुज्येष्ठम्—अनुगतो ज्येष्ठ इत्यनुज्येष्ठस्तम् “अनुज्येष्ठम्” इत्यत्र “म-
नोरप्रधानकनीयसी” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्तः ।

पू—यथापचति शोभनम्—इत्यत्र “पूजायां नानन्तरम्” इति सूत्रे-
णाऽनुदात्तस्वर एव

अहो कटं करिष्यति—अत्र प्रयोगे “शेषे विभाषा” इति वैकल्पिकाऽ-
नुदात्तो भवति—

कटं जातु करिष्यति—अत्र कटशब्दः फिट्वात् “फिषेन्त उदात्तः”
इति सूत्रेणाऽनुदात्तः जातु शब्दो निपातात् “निपाता आद्युदात्ताः” इति सूत्रे-
णाऽनुदात्तः । करिष्यसि इत्यत्र “सुष्पितौ अनुदात्तौ” इति सूत्रेणाऽनुदात्तः ।
“जात्वपूर्वम्” इति सूत्रेण निषेधस्तु न सूत्रे अपूर्वग्रहणात् ।

देवः पचतीव—अत्र प्रयोगेऽनुदात्तत्वे प्राप्ते “चनचिद्विगोत्रादितद्धि-
ताम्नेडितेऽवगते” इति सूत्रेण निषेधः । अत्र देव इति “फिषेन्त उदात्तः”
इति अन्तोदात्तः ।

प्रजामेकां रक्षति—अत्राऽनुदात्तत्वे प्राप्ते “एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्”
इति सूत्रेण निषेधः—

हन्त कुरु—अत्र “हन्त च” इति सूत्रेण वैकल्पिकाऽनुदात्तः “निपातैर्यद्-
यदि” इति सूत्रेण निषातप्रतिषेधः ।

१६२७

१—अङ्गिरस्वत्, ब्राह्मं नो देवाः, विदामक्रन्, बर्हिष्येषु निधिषु
संवत्सरीणः, सोमः सधस्थम्, मरुतस्तज्जुष्टन, प्रप्रायमग्निः,
एषु लौकिकरूपप्रदर्शनपूर्वकं वैदिकसाधनप्रकारं प्रदर्शयत ।

२—द्रवत्प्राणी शुभस्पती, ममत्तु नः, तित्तिरिः, अहरहर्जायते, राजा, पशु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषान् निरूपयत ।

३—रज्जुशारदम्, पण्यकम्बलः, तन्तुवायः, मत्स्यचूर्णम्, पशु ससूत्रविधायक सूत्रोत्पत्तिपुरस्सरं स्वरान् निरूपयत ।

४—जातु भोक्ष्यसे, आम् पचसि देवदत्त ३ अयं वाव हस्तः आसीत् अघीष्व माणवक, पुरा विद्योतते विद्युत्, पशु वाध्यस्वरनिर्देशं स्वरविधायकानि लिखत ।

५—व्यत्ययो बहुलम्, उत्तरपदवृद्धौ सर्वश्च, विभाषोत्पुच्छे, सूत्राणां विषयान् प्रदर्शयत ।

प्रश्नोत्तराणि—

१—अङ्गिरस्वत्—अङ्गिरसा तुल्यमङ्गिरस्वदिति विग्रहे अङ्गिरस्—शब्द-
“तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः” इति सूत्रेण वतिप्रत्यये तद्धितान्तत्वात् प्रतिष्ठा-
कत्वे “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सूत्रेण सुपो लुकि “नभोङ्गिरोमनु-
वेत्युपसङ्ख्यानम्” इत्यनेन भत्वे भत्वात् क्त्वाऽभावे ‘अङ्गिरस्वत्’ भु-
भवति लोके तु ‘अङ्गिरोवत्’ इत्येकमेव रूपं स्यात् ।

त्राध्वं नो देवाः—पालनार्थक—ङकारेत्संज्ञक ‘त्रै’ धातोर्लोङि ध्वमि श-
“बहुलं छन्दसि” इति सूत्रेण अदादिभिन्नस्यापि शपो लुकि एतत्सामर्थ्यात्
“आदेच उपवेशेऽशिति” इति सूत्रेणात्वे ‘त्राध्वम्’ इति सिद्धम् लोके ‘त्रा-
ध्वम्’ इति बोध्यम् ।

विदामक्रन्—विद्—धातोर्लुङि “अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रा-
यामकः पावयां क्रियाद्विदामक्रन्निति छन्दसि” इति सूत्रेण आमि लुङ्प्र-
करोत्यनुप्रयोगे तस्य क्षिभादेशे अन्तादेशे विदाम् + कृ + अन्ति इति जाते नि-
तनात् गुणाऽभावे यणि “लुङ्लङ्लुङ्ङ्वडुदात्तः” इत्यङ्गमे “इतश्च” इति
कारलोपे संयोगान्तलोपे “विदामक्रन्” इति सिद्धम् लोके तु ‘अवेदिषु’ इति
इति भवति ।

वर्हिष्येषु निधिषु—‘वृंह’ धातोः “वृंहतेर्नलोपश्च” इति सूत्रेण इस् प्र-
ये वृंहतेर्नलोपे च गुणो रपरे वर्हिस् शब्दात् वर्हिषि दत्तमिति व्युत्पत्तौ “वर्हिभि-
दत्तम्” इति सूत्रेण यत् प्रत्यये अनुबन्धलोपे षत्वे सुपि ‘वर्हिष्येषु’ इति भवति च

संवत्सरीणः—संवत्सरे जातः संवत्सरीणः इत्यर्थे संवत्सर शब्दात् “स-
परिपूर्वात् च” इति सूत्रेण खप्रत्यये खस्य “आयनेयीनीयियः फढखञ्ज-
यां प्रत्ययादीनाम्” इति सूत्रेण खस्य ईनादेशे अकारस्य लोपे णत्वे प्रादिपदिक-
सौ सत्वे विसर्गे ‘संवत्सरीणः’ इति सिद्धम् । छप्रत्ययपक्षे ‘संवत्सरीयः’ ।

सोमः सधस्थम्—सह तिष्ठति इत्यर्थे “आतोऽनुपसर्गं कः” इति सूत्रेण
धाधातोः कप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “आर्द्धधातुकं शेषः” इति सूत्रेणार्द्धधातुकत्वे
“आतो लोप इटि च” इति सूत्रेण आकारस्य लोपे ‘सधमादस्थयोऽङ्गुन्दसि’
इति सूत्रेण सहस्य सधादेशे विभक्तिकार्ये ‘सधस्थम्’ इति भवति लोके तु ‘सह-
स्थम्’ इति बोध्यम् ।

मरुतस्तज्जुजुष्टन—ईकारेतसंज्ञक प्रीतिसेनार्थक जुष् धातोः लोटि ध्वमि
तसनसनथनाश्च” इति सूत्रेण ध्वमित्यस्य तनादेशे व्यत्ययेन परस्मैपदत्वे श्लौ
व आते “श्लौ” इति द्वित्वे “पूर्वोऽभ्यासः” इति अभ्याससंज्ञायां “ह्लादिः
शेषः” इति सूत्रेण षकभ्यासषकारस्य लोपे षट्त्वे ‘जुजुष्टन’ इति सिद्धम् । लोके
‘जुपध्वम्’ इति भवति ।

प्रप्रायमग्निः—अत्र प्रयोगे “प्रसमुपोदः पादपूरणे” इति सूत्रेण द्वित्वे
प्रप्रायमग्निः” इति सिद्धम् एवं विधस्य भाषायां प्रयोगः नास्तीति छन्दस्येवेदं
विधानम् ।

२—द्रवत्पाणी शुभरूपती—अत्र प्रयोगे “सुवामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे”
इति सूत्रेण उदात्तत्वम् ।

ममत्तु नः—अत्र प्रयोगे “भीहोभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्य-
न्यात्पूर्वं पिति” इति सूत्रेणाऽऽद्युदात्तः ।

तित्तिरिः—अत्र प्रयोगे “शकुनीनां च लघुपूर्वम्” इत्यनेन पूर्वं लघु उदात्तः ।
अहरहर्जायते—मासि मासि—अत्र प्रयोगे “ऊडिदंपदाद्यप्पुत्रैद्युभ्यः”
इति सूत्रेणाऽसर्वनामस्थानविभक्तोरुदात्तत्वे “अहरहर्जायते मासि मासि” इति
भवति ।

इन्धे राजा अत्र प्रयोगे “तास्यनुदात्तनडिदुपदेशाल्लसार्वधातुक-
भिन्नुदात्तमनडिडो” इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे प्राप्ते “विन्दीन्धिखिदिभ्यो नेति
तिक्त्वम्” इत्यनेन तन्निषेधे ‘इन्धे राजा’ इति ।

वार्थक—“वैवावेति च च्छन्दसि” इति सूत्रेण वैकल्पिकाऽनुदात्तत्वे “अयं वा
रस्य ह हस्त आसीत्” इति भवति ।

अधीष्ण्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत्—अत्र प्रयोगे “तिङ्ङतिङः”
इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे प्राप्ते तम्प्रवाध्य “पुरा च परीक्षायाम्” इति सूत्रेण
वैकल्पिकाऽनुदात्तत्वे “अधीष्ण्व माणवक् पुरा विद्योतते विद्युत्” इति पक्षे
योतत इति धातुस्वरेणाऽनुदात्तत्वे “तास्वनुदात्तेदि”ति लघावधातुकनिघाते
निघाते “अधीष्ण्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत्” इति भवति ।

५—व्यत्ययोबाहुलम्—विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्याच्छन्दसि, इत्यर्थः ।
तिङ्ङतिङा शुभस्य भेदति’ अत्र भेदतीत्यस्य रौधादिकात् इनमि सति भिनत्ति
तिङ्ङतिङा प्राप्तेऽनेन शपि भेदतीति भवति ‘जरसामरते पातेः’ अत्र म्रियते इति
संप्राप्ते तौदादिकशप्रत्ययेन ‘इन्द्रे वस्तेन नेषतु’ अत्र नयतु इति प्राप्तेन न यते-
लोट शप् सिपौ द्वौ विकरणौ । ‘इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्’ तरेमेत्यर्थः । तर-
नुक्तेर्विध्यादौ लिङ् उः सिप् शप् च त्रयो विकरणाः । एवञ्च ।

‘सुसिद्धपद्मलिङ्गनराणाम् कालहलच्स्वरकर्तृयञाञ्च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृद्देवां सोपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन” ॥
शास्त्रकृत् पाणिनिः आचार्यः एषां सुप्रसृतीनां व्यत्ययमिच्छति सोपि तथा-
वेधो व्यत्ययः बाहुलकेन सिद्ध्यति—

सुसिद्धादीनां क्रमशः उदाहरणानि ।
“धुरि दक्षिणायाः” । अत्र दक्षिणस्यामिति प्राप्ते इति, सुपः “चपालं
अश्वयूपाय तक्षति” अत्र तक्षन्ति इति प्राप्ते इति, तिङ् उपप्रहः परस्मैप-
तात्मने पदे । “ब्रह्मचारिणमिच्छते” इच्छतीति प्राप्ते “प्रतीपमन्य ऊर्मियु-
यति” । युध्यते इति प्राप्ते । “मधोःस्तृप्ता इवास्ते” । मधुनः इति प्राप्ते ।
रः पुरुषः । “अधः स वीरैर्दशभिः वियूयाः” । वियूयादिति प्राप्ते । कालः
गालवाची प्रत्ययः “इवोऽग्नीनां वास्यमानेन” लुटो विषये लृट् । “तमसो
अदुक्षत्” । अधुक्षत् इति प्राप्ते । “मित्र वयञ्च सूरयः” । मित्रावय-
ति प्राप्ते । एवं क्रमेणोदाहरणानि सर्वेषां मूले स्पष्टीकृतानि । अस्य सूत्रस्यायमेव
सूत्रेण इति बोध्यम् ।

उत्तरपदवृद्धौ सर्वञ्च—उत्तरपदस्येत्यधिकृत्य या वृद्धिर्विहिता तद्वत्पुत्तर-

पदे परे सर्वशब्दो दिक्शब्दश्चान्तोदात्ताः भवन्ति । तेन “सर्वपाञ्चालकः” इति भवति । अत्र उत्तरपदस्याधिकाराभावे “सर्वभाषः” इति भवति । “सर्वकारकः” इत्यत्र दोषापत्तिरिति ।

विभाषोत्पुच्छे । उच्छद्वात् परः पुच्छशब्दः अन्तोदात्तो वा स्यात्पुच्छ इत्यर्थः । “उत्क्रान्तः पुच्छादुत्पुच्छः” । यदा तु पुच्छमुदस्यति उत्पुच्छ इति भवति । एतत्पुच्छस्तदा याथादिस्वरेण नित्यमन्तोदात्ते प्राप्ते विकल्पोयम् । सेयमुच्छा विभाषा तत्पुरुषग्रहणाभावे उदस्तं पुच्छं येन स उत्पुच्छः इत्यत्र दोषापत्तिरिति तत्पुरुषग्रहणमिति ।

१४२८

१—वाजिनेषु, मान आधक्, देवयज्यायै, विभाजं नाशकत्, मनुजिखा सयूथ्यः, मध्व्यः, आसुति करिष्ठः, ज्या इयम्, नूनं तात् ; दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य, अग्नाइ पत्नीवः । एषां मध्ये नवसु प्रयोगेषु यानि वैदिकप्रक्रियाकार्याणि तानि निदिशं स्वेच्छया लेख्यानि ।

२—सतिशिष्टस्वरवलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्यः, अभ्यस्तानामाभ्यचश्छन्दसि, सगतिरपि तिङ्- एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि ।

३—ऋत्विक्, हन्त प्रविश, जातु भोदयसे, त्रिपादूर्ध्वः, वस्त्रान्तश्च शचीपतिम्, काण्डपृष्ठः, तन्तुवायः, त्वेतासः, न्यर्बुदम्, का, गेहम्, दातवाड ।

एषां मध्ये दशसु स्थलेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रदर्शयित्वा

प्रश्नोत्तराणि—

१—वाजिनेषु—अस्य अयस्मयादिगणे पाठात् “अयस्मयादीनि कृत्वा सि” इति सामर्थ्यात् “उभय संज्ञान्यपीति वक्तव्यम्” इत्यनेन भवेत्ति च जातेऽस्य पदत्वाज्जश्वे भत्वात्कृत्वाभावे “वाजिनेषु” इति भवति ।

मान आधक्—आङ्पूर्वकदृधातोर्लुङि तिपि च्लौ “मन्त्रे घसह्वरणे दहाद्वृचृगमिजनिभ्यो लोः” इति सूत्रेण च्लेर्लुकि “इतश्च” इती लोपे हलङ्यादिना तकारस्य लोपे आटि वृद्धौ “दादेर्धातोर्घः” इति

स्य षत्वे “एकाचो वशो भष् भूषन्तस्य रुधोः” इति सूत्रेण भष्मावे
मान आधक्” इति भवति ।

देवयज्यायै—“छन्दसि निष्टक्यदेवहूयप्रणीयोनीयोच्छिद्यमयंस्त-
प्राध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छयप्रतिषीव्य ब्रह्मवाद्यमाव्यस्ताव्योपचा-
यपृष्ठानि” इति सूत्रे देवयज्येति निपातनात् देवशब्दे उपपदे यज्धातोः यप्रत्यये
यमुपि देवयज्याशब्दस्य चतुर्थ्यैकवचने “देवयज्यायै” इति ब्रीहिल्लिङ्गमात्र एव उदा-
पिहरणमिति बोध्यम् ।

विभाजं नाशकत्—विभक्तुमित्यर्थे विपूर्वक भजधातोः “शकिणमुत्क-
मूलौ च” इति सूत्रेण णमुल् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे णित्वात् “अत उपधायाः”
अनुति सूत्रेण उपधाऽकारस्य वृद्धौ विभक्तिकार्ये “विभाजं नाशकत्” इति भवति ।
ननु अनुसखा स यूथ्यः—अत्र प्रयोगांशे सयूथशब्दात् “सगभंसयूथ-
सनुताद्यन्” इति सूत्रेण यन् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे प्रातिपदिककार्ये “सयूथ्यः”
निति भवति ।

मध्व्यः—मधुशब्दात् “मधोः” इति सूत्रेण मयङर्थे यत्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे
माओर्गुणः” इति सूत्रेण गुणे “वान्तो षि प्रत्यये” इति अवादेशे मध्व्य इति
स्यते प्रातिपदिकत्वे सौ षत्वे विसर्गे “मध्व्यः” इति सिद्धम् ।

आसुतिं करिष्ठः—कर्तृ शब्दात् “तुइछन्दसि” इति सूत्रेण इष्टन् प्रत्यये-
नानुबन्धलोपे “तुरिष्ठेमेयस्सु” इति तृलोपे करिष्ठ इत्यस्य प्रातिपदिकत्वे विभ-
क्तिकार्ये “करिष्ठः” इति ।

ज्या इयम्—अत्र “गुणे प्राप्ते ईषाभक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभावो
नाथक्तव्यः” इत्यनेन प्रकृतिभावे “ज्या इयम्” इति भवति ।

नूनं कृणुतात्—हिंसाकरणार्थकेकारेऽर्शश्च कृव्-धातोः लोटि ये प्रत्यये सा-
धातुक्त्वे “इदितो नुम् धातोः” इति नुमि उमावितौ “धिन्विकृण्वोरच”
इति सूत्रेण उप्रत्यये वकारस्याकारेऽकारस्यलोपे “तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः”
ते सूत्रेण तादेशे णत्वे “कृणुत” इति जाते “तस्य तात्” इति सूत्रेण तस्य तात्
यादेशे “नूनं कृणुतात्” इति भवति—लोके “कृणुत” इति भवति ।

दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य—अत्र (दविध्वतः) “दाघति दधति दर्ध-
” इत्यादिसूत्रेण यङ्लुगन्तशत्रन्तश्वरतेरभ्यासस्य तिपातनात् विगागमे धातो-

ऋकारलोपे च 'दविध्वत्' शब्दस्य "दविध्वतः" इति भवति शत्रन्ताऽवस्था
नुम् तु न "नाभ्यस्तान्छतुः" इति निषेधात् ।

अग्रा ३ इ पत्नीवः—अत्र प्रयोगे "आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतवि-
योर्य वक्तव्यः" इत्यनेन प्लुतविकारे 'अग्रा ३ इ पत्नीवः' इति भवति ।

२—सतिशिष्टस्वरवलीयस्त्वमिति—योहि यस्मिन् सति शिष्यते सति
तस्य बाधको भवति इत्यर्थः । एतच्च सतिशिष्टस्य बाधकत्वं न्यायसिद्धम् । त
उदात्तस्वरितविधिभिरेकवाक्यतामापन्नयाऽनया शेषनिघातः क्रियते तत्रोत्सर्ग
ऽपवादस्य वा चरमा या प्राप्तिस्तत्रास्याः उपस्थाने पूर्वा प्रवृत्तिर्बाध्यते । तद्वा
'मौपगवत्वम्' इत्यत्राण् प्रत्यये त्वप्रत्यये च आद्युदात्तश्च इति प्रवर्तमानं स्व
प्रथमप्रवृत्तिं बाधते द्वितीयप्रवृत्त्या लक्ष्यं परिनिष्ठापयतीति दिक् । गोपायतं न

अभ्यस्तानामादिः—अनिद्यवादौ लसार्वाधातुके परेऽभ्यस्तानामादित्
स्यात् । इत्यर्थः । 'ये ददति प्रिया वसु' । इत्युदाहरणम् । परत्वाच्चित्ता
प्यर्थं बाधते तेन 'दधाना' इत्युदाहरणम् ।

व्यवश्छुच्छुसि—इति सूत्रस्वरूपम् । विकारे मयट् स्यात् इत्यर्थः "म
मयं बर्हिः" । "यस्य पर्णमयी जुह्वः" इत्युदाहरणम् ।

सगतिरपितिङ्—“सगतिरपि तिङ्” इति सूत्रस्वरूपम् पूजनेभ्यः क
दभ्यस्तिङन्तं पूजितमनुदात्तम् । इत्यर्थः । "यत्काष्ठां प्रपचति" इत्युदाह

३—ऋत्विक्—अत्र "ऋत्विग्" इत्यादिसूत्रेण किनि सर्वापहारे "व
स्वपियजादीनाङ्किति" इति सूत्रेण सम्प्रसारणे "सम्प्रसारणाच्च" इति
वैरूपे ऋत्विक्छन्दः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणाऽन्तोदात्ते "ऋत्विक्" इति सर्वा

हन्त प्रविश—अत्र प्रयोगे "तिङ्ङितिङः" इति सूत्रेण निघाते
तस्य "निपातैर्यद्वयदि" इति नित्यनिषेधे प्राप्ते तम्प्रबाध्य "हन्त च" ।
नेन वैकल्पिकाऽनुदात्तत्वे कृते "हन्ते प्रविश" इति पक्षेऽन्तोदात्ते "हन्ते प्र
श" इति भवति ।

जातु भोदयसे १६ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

त्रिपादूर्ध्वः—त्रयः पादाः यस्येति त्रिपाद्—अत्र समासे "संख्या
र्चस्य" पादशब्दस्याऽकारस्यलोपे "द्वित्रिभ्यां पादूर्ध्वसु बहुव्रीहौ"
सूत्रेणाऽन्तोदात्ते "त्रिपादूर्ध्वः" इति भवति ।

वस्त्रान्तरः—व्यवधानवाचकात् परममन्तोदात्तमित्यर्थक “व्यवायिनोऽन्तरम्” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्तेऽस्मादेवज्ञापकात् अन्तरशब्दस्य परनिपाते “वस्त्रान्तरः” इति भवति ।

शचीपतिम्—अत्र षष्ठीसमासे “समासस्य” इत्यन्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्र-
वाध्य “उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्” इति सूत्रेण पूर्वोत्तरपदयोः युगपत् प्रकृ-
तिभावे तेन पतिरित्यत्र प्रत्ययस्वेरणाऽद्युदात्ते शचीत्यत्र शाङ्गरवादित्वात् ङीनि
नित्वादाद्युदात्तत्वे तत्सिद्धम् ।

काण्डपृष्ठः—कण्ठादीन्युत्तरपदानि संज्ञौपम्ययोराद्युदात्तानि स्यु-
र्वहुव्रीहौ । इत्यर्थक “कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च” इति सूत्रेणाद्युदात्ते “काण्डपृष्ठः” ।

तन्तुवायः—१२ पृष्ठे षष्ठ्यम् ।

त्वो तासः—अत्र त्वया उताः=रक्षिताः त्वोतासः । मपर्यन्तस्य “प्रत्ययो-
त्तरपदयोश्च” इति त्वादेशे छान्दसत्वादकारलोपे उता इति अवतेः के “ज्वर-
त्वर” इत्यादिनोति वृद्धौ छान्दसत्वादिङागमाऽभावेऽसुगि “तृतीया कर्मणि”
इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे “एकादेश उदात्तेनोदत्तः” इति जाते स्वरित-
प्रचये “त्वोतासः” इति भवति ।

न्यवुदम्—“न्यवुद्व्यल्लक्षयोरादिः” इत्यनेन आदिस्वरिते ‘न्यवु-
दम्’ इति भवति ।

मल्लिका—मल्लिकेत्यत्र “स्त्रीविषयवर्णाऽक्षुपूर्वाणाम्” इति सूत्रेणा-
द्युदात्ते ‘मल्लिका’ इति भवति ।

गेहम्—अत्र “नन्विषयस्याऽनिसन्तस्य” इति सूत्रेणाद्युदात्ते प्राप्ते
“गेहार्थानामस्त्रियाम्” इत्यनेनाऽन्तोदात्ते ‘गेहम्’ इति भवति ।

दातवाउ—ददातेः “कृत्यार्थं तवैकेकेन्यत्वनः” इत्यनेन तवै प्रत्यये
दा + तवै + उ इति जाते ऐकारस्याऽऽयादेशे “लोपः शाकल्यस्य” इति यका-
रस्य लोपे दातवा + उ इति जाते “अन्तश्च तवै युगपत्” इति सूत्रेण तवै-
प्रत्ययान्तस्याद्यन्तयोर्युगपदाद्युदात्तयोः कृतयोः ‘दातवा उ’ इति भवति ।

१४२४

१—सग्धिश्च मे, पूर्णो विवष्टि, वीरुधः पारयिष्णवः, गृभ्णामि ते,
मध्वा जभार, वायवे पिवध्यै, यस्येदमभ्यं हविः, कथा ग्रामं न

सम्प्रसारणे गृह्णामीत्यत्र “ह्रस्वहोर्भञ्जुन्दसि” इत्यनेन हकारस्य भकारे “गृ-
भ्णामि ते” इति सिद्धम् ।

वायवे पिवध्यै—पाधातोः तुमर्थे “तुमर्थे सेसेनसेऽसेनृकसेकसेन-
ध्यैअध्यैनृकध्यैकध्यैनृशध्यैशध्यैनृतवैतवेडूतवेनः” इति सूत्रेण शध्यैनृ-
प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “तिङ्शित्सार्वधातुकम्” इति सार्वधातुक्त्वे “पात्राधमा-
स्थाग्नादाण्ड्प्रत्ययसिद्धिदसदां पिवजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यच्छ-
धौशीयसीदाः” इति सूत्रेण ‘पा’ इत्यस्य पिवादेशे पररूपे ‘पिवध्यै’ इति भवति ।

मध्वा जभार—हरणार्थक जकारेत्सञ्ज्ञक हधातोर्लिटि णलि द्वित्वेऽभ्यास-
कार्ये ‘जहार’ इति जाते “ह्रस्वहोर्भञ्जुन्दसि” इति हस्य भकारे ‘जभार’ इति
एवञ्च ‘मध्वा जभार’ इति जातम् ।

यस्येदमप्यं हविः—अद्भिः संस्कृतमिति विग्रहे तृतीयान्तादपञ्चम्यात्
“अद्भिः संस्कृतम्” इति सूत्रेण यत्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे सुपो लुकि विभक्तिकार्ये
‘अप्यम्’ इति भवति ।

कथा ग्रामं न पृच्छसि—केन हेतुना न पृच्छसीत्यर्थः । कथा इत्यत्र “प्या
हेतौ च छन्दसि” इति सूत्रेण किमस्थाप्रत्यये तस्य “प्राग्दिशो विभक्तिः”
इत्यधिकाराद्विभक्तिसञ्ज्ञायां “किमः कः” इति सूत्रेण किमः कादेशे अव्ययत्वे
सुपो लुकि ‘कथा ग्रामं न पृच्छसि’ इति सिद्धम् ।

तेनो अवन्तु—अवतेर्लोटि प्रथमपुरुषबहुवचने अवन्तु इति भवति ततः
तेनो अवन्तु इति दशायां “एङः पदान्तादति” इति सूत्रेण पूर्वरूपे प्राप्ते
तम्प्रवाच्य “अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमन्त्ववस्युषु च” इति सूत्रेण
प्रकृतिभावे ‘तेनो अवन्तु’ इति सिद्धम् ।

त्मना देवेषु—आत्मना देवेषु इत्यवस्थायां “मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः”
इति सूत्रेण आत्मनश्चन्द्रस्यादेराकारस्य लोपे “त्मना देवेषु” इति सिद्धम् ।

दिवं सुपर्णो गत्वाय—गम्-धातोः क्त्वा प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “अनुदा-
चोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो भल्लि क्लिति” इति सूत्रेणा-
नुनासिकलोपे “क्त्वा यक्” इति सूत्रेण क्त्वः यगागमेऽनुबन्धलोपे ‘गत्वाय’
इति एवञ्च ‘दिवं सुपर्णो गत्वाय’ इति सिद्धम् ।

वृका अघायवः—अघशब्दात् “छन्दसि पुरेच्छायां क्यच्” इति

सूत्रेण क्यचि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “क्याच्छुन्दसि” इति सूत्रेण क्यजन्तात् क्यये सति दीर्घप्राप्ते “न छुन्दसि” इति निषेधे “अद्याघस्याऽऽत्” इति सूत्रेणोत्तरवर्तिनोऽकारस्याऽऽति निष्पन्नादघायुशब्दाजसि ‘अघायवः’ इति भवति ननु ईत्वमात्रे “न छुन्दसि” इति सूत्रस्य प्रवर्तनात् दीर्घेणैव सिद्धे “अघस्याऽऽत्” इति सूत्रं किमर्थमिति चेन्न एतत्सूत्रारम्भसामर्थ्यात् न ईत्वमात्रं किन्तु दीर्घस्यापि निषेधेन तस्यावश्यकत्वात् ।

निषत्तमस्य चरतः—निपूर्वक लृकारेतसंज्ञक षद्धातोः “धात्वादेः सः” इति सूत्रेण सकारे निष्ठासंज्ञकप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “सदिरप्रतेः” । सूत्रेण सकारस्य षत्वे “रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः” इति सूत्रेण निष्ठा तकारस्य नत्वे प्राप्ते “नसत्तनिषत्ताऽनुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि च्छुन्दसि” इति सूत्रेण निपातनात् नत्वाऽभावे चत्वे विभक्तिकार्ये “निषत्तम्” इति भाव्यञ्च “निषत्तमस्य चरतः” इति सिद्धम् ।

हरिवो मेदिनं त्वा—हरयो विद्यन्ते यस्येति विग्रहे “तदस्यास्त्यति ग्निति मनुप्” इति मनुपि अनुबन्धलोपे “छुन्दसीरः” इति मकारस्य र हरिवच्छब्दात् सम्बुद्धयेकवचने सौ “उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातो इति सूत्रेण जुमि उमावितो “हलङ्ग्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्य पृक्तं हलू” । सूत्रेण सुलोपे संयोगान्तलोपे च कृते । “अलोन्त्यस्ये” ति परिभाषाबलात् “म वसोरु सम्बुद्धौ च्छुन्दसि” इति सूत्रेण नकारस्य रुत्वे “संयोगान्तलो रोरुत्वे सिद्धो वक्तव्यः” इति वचनात् “हशि च” इति सूत्रेणोत्वे गुणे ‘हरिवो’ इति एवञ्च ‘हरिवो मेदिनं त्वा’ इति भवति ।

२—प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे—ऋक्पादमध्य एङ् प्रकृत्या स्यात् । परे न तु वकारयकारपरेऽति । इति सूत्रार्थः । उपप्रयन्तो अध्वरम्, सुञ्च अध्वसुनृते । इत्युदाहरणे ।

प्लुतावैच इदुतौ—दूराद्भूतादिषु प्लुतो विहितस्तत्रैव ऐचः प्लुतप्र तदव्यवाविदुतौ प्लवेते । इत्यर्थः । उदाहरणञ्चात्र—ऐ इति कायन, औऽपग स्वरितोऽवाऽनुदत्ते पदादौ—अनुदत्ते पदादौ परे उदात्तेन सहैकस्व स्वरितो वा स्यात् । इत्यर्थः । उदाहरणञ्चात्र—“वी३दं ज्योतिर्हृदये” । “आ अलोको दिवीयते ।”

उदात्तयणो हल्पूर्वात्—उदात्तस्थाने यो यण् हल्पूर्वस्तस्मात्परा नदी
शसादिर्विभक्तिश्च उदात्ता स्यात् । इत्यर्थः । चोदयित्री सूनृतानाम् । एषा
नेत्री । ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे । इत्युदाहरणानि ।

३—स्वपन्ति—अत्र “स्वपादिर्हिसामच्यनिटि” इति सूत्रेण लसार्व-
धातुके परे वैकल्पिकाऽद्युदात्तो भवति । पक्षे प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तता भवति ।

सर्वे—इत्यत्र “सर्वस्य सुपि” इति सूत्रेण सुपि परे सर्वशब्दस्याद्युदात्ते
‘सर्वे’ इति ।

इन्धानः—इत्यत्र “विभाषा वेण्विन्धानयोः” इति सूत्रेण वैकल्पिक-
आद्युदात्तो भवति । अत्र इन्धनशब्दो यदि चानशन्तस्तदा । चित्वादन्तोदात्तः ।
यदा च शानजन्तस्तदा ‘लसार्वधातुकाऽनुदात्तत्वे’ कृते उदात्तनिवृत्तिस्वरेण
मध्योदात्तः । “श्नसोरल्लोपः” इत्युदात्तस्य श्नमोऽकारस्य लोपात् सर्वथा-
प्यप्राप्तमाद्युदात्तत्वं पक्षे विधीयते इति ।

जाया—अत्र ‘स्त्रीविषयवर्णनाम्नामि’ति आद्युदात्तत्वे प्राप्ते तम्प्रबाध्य
“अयपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य” इति सूत्रेण यकारपूर्वस्यान्त्याचः उदात्तत्वे ‘जाया’ इति ।

कोलाहलः—अत्र प्रयोगे “लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः” इति सूत्रेण
बह्वचस्य गुरुदात्तो जातः ।

जानती—शत्रन्तजानतीत्यत्र “आद्युदात्तश्च” इत्यनेन शत्रन्तोदात्ते “श-
तुरनुमो नद्यजादी” इति सूत्रेणोदात्तत्वे ‘जानती’ ति भवति ।

शस्त्री श्यामा—अत्र “उपमानानि सामान्यवचनैः” इति समासे
“समासस्य” इति सूत्रेण अन्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रबाध्य “तत्पुरुषे तुल्यार्थ-
तृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिभावे
‘शस्त्री श्यामा’ इति भवति । अत्र शस्त्रीशब्दः गौरादिष्विषन्तोदात्तः ।

गोहितम्—अत्र समासे कृते “समासस्य” इति सूत्रेणान्तोदात्ते प्राप्ते
तम्प्रबाध्य “क्ते च” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे जाते ‘गोहितमि’ति ।

आर्यकुमारः—आर्यश्चासौ कुमार इति विग्रहे कर्मधारयसमासे सुपो लुकि-
“समासस्य” इति सूत्रेणान्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रबाध्य “आर्यो ब्राह्मणकुमा-
रयोः” इति सूत्रेण पूर्वपदस्य आर्यशब्दस्य वैकल्पिकप्रकृतिभावे ततश्च आर्य-
शब्दस्य प्यदन्तत्वादन्तस्वरिते ‘आर्यकुमारः’ इति भवति ।

युक्तारोही—अत्र समासे कृते “समासस्य” इति सूत्रेणान्तोदात्ते प्रा-
तम्बाधित्वा “युक्तारोह्यादयश्च” इति सूत्रेणाद्युदात्ते ‘युक्तारोही’ इति जातम्

भावसथः—आहुपसर्गपूर्वकवस्थातो “उपस वसेः” इति अथप्रत्य-
“थाऽथघञ्काजवित्रकाणाम्” इति सूत्रेण अन्तोदात्ते ‘भावसथः’ इति भवति
निरुपलम्—निर्गतः उपलः यस्मात् अथवा निर्गतः उपलः इति प्रादि-
मासे सुपो लुकि निरुपलशब्दस्य “निरुदकादीनि च” इति सूत्रेणान्तोदा-
‘निरुपलम्’ इति भवति ।

सत्यं भोक्ष्यसे—अत्र “तिङ्ङतिङः” इति सूत्रेण निघाते प्राप्ते “स-
प्रक्षने” इति सूत्रेण तन्निषेधे “सत्यं भोक्ष्यसे” इति, अत्र (भोक्ष्यसे) मध्योदात्तः

अग्निम्—अत्र च माध्वमतेऽव्युत्पत्तिपक्षे “क्विषेऽन्त उदात्तः” इ-
सूत्रेणाऽन्तोदात्तता भवति । वस्तुतस्तु “घृतादीनाञ्च” इति सूत्रेण घृतादित-
दन्तोदात्तता भवति । व्युत्पत्तिपक्षे तु “जित्यादिर्नित्यम्” इति निप्रत्ययत्वं
णाऽद्युदात्तः अम् सुप्त्वात् “सुप्पितौ अनुदात्तौ” इत्यनेनाऽनुदात्तः “अग्निं पू-
रुपः” इत्येकादेशः “एकादेश उदात्तेनोदात्तः” इति ‘अग्निम्’ इति भवति ।

१६३०

१—प्रणङ्गर्त्यस्य । प्रण आयूंषि तारिषत् । पूर्यासः । उभयाग्निम्
भरता जातवेदसम् । नमो भरन्त एमसि । जुजोषत् । कनिका
ज्जनुषम् ।

एषु लौकिकरूपप्रदर्शनपुरस्सरं वैदिककार्याणि प्रदर्शयत ।

२—उपाग्न्यधीयान । खलप्याशा । अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् । वा-
त्वाग्ने दिवे दिवे । अक्षद्युवा । सेतपृश्निःसुभ्वे ।

एषु स्वरप्रक्रिया निर्दिश्यताम् ।

३—सौवर्ग्यः सप्तम्यस्तदन्तसप्तम्यः । स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यानवत् ।
स्वरविधौ प्रत्ययलक्षणं न । सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र वि-
करणेभ्यः ।

इत्येतेषु वचनेषु द्वयोः प्रमाणं प्रयोजनञ्च निर्दिशत ।

४—भूपतिः, दूरादागतः । फलकपुरम् । सुवीरेण । अकारणवेष्टकिकम् ।
एषु कस्कः स्वरो भवति केन केन शास्त्रेण ।

५—बहुव्रीहिकः । प्रतिजनः । नह भोक्ष्यसे । जातु भोक्ष्यसे । काष्ठा-
ध्यापकः ।

६षु स्वरविधायकानि विशेषशास्त्राणि निर्दिश्यताम् ।

प्रश्नोत्तराणि—

१—प्रणङ्मर्त्यस्य—प्रपूर्वावर्णलोपि तिपि चञौ “मन्त्रे घसह्वरणशवृ-
द्धाद्बृच्चृगमिजनिभ्यो लेः” इति चलेर्लुकि “इतश्च” इति सूत्रेणकारस्य
लोपे अडागमाऽभावे “हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्य पृक्तं हल्” इति सूत्रेण
तकारस्य लोपे “उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य” इति सूत्रेण णत्वे मर्त्य-
स्येति मकारेऽनुनासिके परे “यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा” इति ङकारे
“प्रणङ् मर्त्यस्य” इति सिद्धम् । लोके ‘प्राणशात्’ इति भवति ।

प्रण आयुंषि तारिषत्—तृधातोः “लिङ्य लेट्” इति लेटि लकारे
“सिब्वहुलं लेटि” इति सूत्रेण धिपि तिपि प्रत्यये चाऽनुबन्धलोपे “लेटोऽ-
डाटौ” इति सूत्रेण अडागमे “इतश्च लोपः परस्मैपदेषु” इति सूत्रेण इतीतो
लोपे “सिब्वहुलं णिङ्गक्तव्यः” इति वार्तिकेन सिपः णिङ्गत्वात् इडागमे धातो-
र्ङ्कारस्य वृद्धौ षत्वे चोक्तरूपं सिद्धम् । लोके लेट्लकारस्तु भवेत्येव नहि । लेटि
तु ‘तरत्’ इति भवति ।

पूर्व्यासः—पूर्वैः कृतमिति विप्रदे “पूर्वैः कृतमिनीयौ च” इत्यनेन यत्
प्रत्ययेऽनुबन्धलोपेऽकारस्य लोपे पूर्व्यशब्दाज्जसि “आज्जसेरसुक्” इत्यस्युक्ति
अनुबन्धलोपे क्त्वादन्त्यावयवे सस्य रुत्वे विसर्गे ‘पूर्व्यासः’ इति । लोके ‘पौ-
विकाः’ इति भवति ।

उभयाविनम्—उभयशब्दात् “बहुलं छन्दसि” इति सूत्रेण विनिप्रत्य-
येऽनुबन्धलोपे “छन्दोविनप्रकरणेऽप्रामेखलाद्ययोभयरुजाहृदयानां दीर्घ-
श्चेति वक्तव्यम्” इति वार्तिकेन दीर्घे विभक्तिर्नायै “उभयाविनम्” इति भवति ।
लोके ‘उभयो’ ‘औभयिकः’ इति भवति ।

भरता जातवेदसम्—नकारोत्सङ्गमृधातोलोटि यप्रत्यये सा धातुत्वे
शपि अनुबन्धलोपे गुणे रपरे “लोटो लङ्वत्” इति लङ्वद्भावे “तस्यस्थमि-
पां तान्तस्तामः” इति सूत्रेण तादेशे “ऋचि तुनुधमक्षुतङ्कत्रोरुष्याणाम्”
इति दीर्घे “भरता” इति सिद्धम् । लोके तु ‘भरत’ इति भवति ।

नभो भरन्त एमसि—आङुपसर्गपूर्वकइण्-धातोर्मसि सार्वधातुके
 शपि शपो लुकि “इदन्तो मसि” इति सूत्रेण मस इकारान्ताऽवयवे गुणे ‘ए
 सि’ इति सिद्धम् । लोके तु ‘एमः’ इति भवति ।

जुजोषत्—प्रीतिसेवनार्थक-ईकारेऽसंज्ञकजुष्धातोर्लेटि व्यत्ययेन परस्मै
 तिपि “इतश्च लोपः परस्मैपदेषु” इति इकारस्य लोपे “लेटोऽडातो
 इत्यटि व्यत्ययेन शपः श्लौ “इलौ” इति सूत्रेण द्वित्वे अभ्यासकार्ये लघूपधगुणे
 “नाभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके” इति निषेधे प्राप्ते “नाभ्यस्तस्या
 चीति निषेधे बहुलं ह्यन्दसीति वक्तव्यम्” इति लघूपधगुणे “जुजोषत्
 इति भवति । लोके लेट्लकारो न भवति, लेटि ‘जुषताम्’ इति भवति ।

कनिक्रदज्जनुषम्—अत्र “दाधर्ति दधर्ति दधर्वि बोभूतु तेतिचे
 लर्थाऽऽपनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्तत्कनिक्रदद्भरिभ्रहविभ्रतोदवि
 द्युतचरित्रतः सरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्याऽऽगनोगन्तीति च” इ
 सूत्रेण ‘कनिक्रदत्’ इति निपातनात् क्रन्देर्लुङि तिपि च्लौ च्लेरङि द्वित्वे
 ऽभ्यासकार्ये “कुहोऽश्रुः” इति सूत्रप्राप्तस्याभ्यासस्य चुत्वाऽभावे निगागमे चाश्र
 वन्धलोपे नकारलोपे च ‘कनिक्रदत्’ इति ततः श्चुत्वे “कनिक्रदज्जनुषम्
 इति । लोके ‘अक्रन्दीत्’ इति भवति ।

२—उपाग्न्यधीयान—अत्र “अव्ययीभावस्य त्विष्यते” इति पराश
 द्भावेन ‘आमन्त्रितस्य च’ इति सूत्रेणाशुदात्तत्वे ‘उपाग्न्यधीयान’ इति भवति ।

खलप्याशा—खलपू-शब्दः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः तस्य “श्रो
 सुपि” इत्यनेन यण् स उदात्तयण् ततः परस्य छिप्रत्ययस्य सुप्वात् “सुपिप
 अनुदात्तौ” इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे तस्याऽनुदात्तस्य “उदात्तस्वरितयोर्यण
 स्वरितोऽनुदात्तस्य” इति सूत्रेण स्वरिते “खलप्याशा” इति अत्र “उ
 त्तयणो ह्रस्पूर्वात्” इति उदात्तत्वन्तु न भवति “नोङ्धात्वोः” इति तन्निषे
 धात् । तस्य च स्वरितेकारस्य यणिततः परस्याशाशब्दाकारस्य “उदात्तस्वरि
 तयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य” इत्यनेनैव स्वरितः । आशाशब्दो हि “आशा
 याः आदिगाख्या चेत्” इत्यन्तोदात्तत्वादनुदात्तादिः । अत्र आशाशब्दस्य निषा
 तस्तु न भवति, आशाशब्दप्रथमाकारस्थानिकस्य स्वरितस्य त्रैपादिकेनाऽसिद्धत्वात्
 ननु यणादेशमप्रति स्वरितस्याऽसिद्धत्वात् स्थानिन्येव यणप्रवृत्तेः “ओजद्वत्”

इत्यत्र इतशब्दे द्वित्वं प्रवर्तते न तु षशब्दे । नच स्वरितयणः परस्येत्याश्रयणात् सिद्धत्वं शङ्क्यम् तथा सति “उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः” इत्यनेन यत्र स्वरितः क्रियते तत्रापि ह्यसिद्धत्वं न स्यात् । नचेष्टापत्तिः लक्ष्यविरोधात् । “प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत्” इत्यादौ स्वरितादर्शनात् । न च “नोदात्तस्वरितोदयम्” इति निषेधः शङ्क्यः “अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा” इति न्यायेन ‘उदात्तादनुदात्तस्य’ इति यत्र प्राप्तिस्तन्मात्रस्य निषेधात् । अन्यथा “खलप्याशान्या अग्निर्ग्राह्या अस्मान्” इत्यादावपि निषेधापत्तिरिति चेदत्राहुर्भाष्यकाराः—योगविभागः करिष्यते । उदात्तयणः परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितो भवति । ततः—स्वरितयणः, ‘उदात्तयणः’ इत्यनुवर्तते उदात्तयणः इत्येवं योऽभिनिर्वृतः । स्वरितस्तयणः परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितः स्यादित्यर्थः । एवञ्चास्थैवाश्रयात्सिद्धत्वं नान्यस्येति शम् ।

[सूचना—‘ननु यणादेशम्प्रति’ इत्यादि सविस्तरप्रश्नोत्तरम्बोध्यम् । प्रयोगमात्रप्रश्ने तु नन्वितः पूर्वलिखितमेव पर्याप्तमिति ज्ञेयम् ।]

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्—“अङ्गेनिर्नलोपश्च” इत्यनेन निष्पन्नोऽग्नि-शब्दः प्रत्ययस्वरेण फिट्स्वरेण वाऽन्तोदात्तः । ‘मुर्धा’ बन्धने “कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्वी”त्यतः क्वनिनि वर्तमाने “श्चन्नुत्तनपूषन्” इत्यत्र मूर्धन् शब्दः कनिन् प्रत्ययान्तोऽन्तोदात्तो निपातितः । दिव्-शब्दात् परस्य षष्ठ्येकवचनस्य “ऊडिदम्पदाद्यपुत्रैद्युभ्यः” इत्युदात्तत्वम् । ककुच्छब्दः प्रातिपदिकस्वरेणाऽन्तोदात्तः एवं कृतेषु सत्सु “यज्ञकर्मण्यजपन्यूहसामसु” इति सूत्रेण एकश्रुतौ ‘अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्’ इति भवति । एकश्रुतित्वन्नाम—‘उदात्तादीनाम् स्वराणामविभागेनाऽवस्थानमेकश्रुतिः ।

उपत्वाग्ने दिवे दिवे—‘उपत्वाग्ने दिवे दिवे’ अत्र प्रयोगे “ऊडिदं पदाद्यपुत्रैद्युभ्यः” इति सूत्रेणोदात्तत्वे ‘उपत्वाग्ने दिवे दिवे’ इति भवति ।

अक्षद्युवा—अक्षदोर्व्यतीति विग्रहे किपि सर्वापहारेऽन्तरङ्गत्वाद्दृढि यणि उपपदसमासे कृत्स्वरेणान्तोदात्ते ‘अक्षद्युवा’ इति भवति ।

सेत्पृथिनः सुभवे—अत्र विवचन्तस्य सुभू इत्यस्य कृदुत्पदप्रकृतिस्वरेणऽन्तोदात्तेऽन्तोदात्तभूतस्य सुभूशब्दस्य चतुर्थ्येकवचने “ओः सुपि” इति यणादेशे

“उदात्तयणो हल्पूर्वात्” इति सूत्रेणोदात्तत्वे प्राप्ते ‘नोङ्घात्वेः’ इति निषेधे ‘सुभवे’ इति भवति ।

३—सौवर्यः—ननु “भीहीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्वं पिति” इति सूत्रे पूर्वग्रहणाभावेनैव सिद्धे पूर्वग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न “सौवर्यसप्तम्यस्तदन्तसप्तम्यः” इति ज्ञानार्थं तस्याऽवश्यकत्वात् । तेन “सर्वसुपि” इत्यस्य सुबन्तस्य सर्वस्येत्यर्थात् ‘सर्वप्रियः’ इत्यादौ स्वरसिद्धिः “जित्यादिर्नित्यम्” इत्यत्र निदन्तस्य निदन्तस्येत्यर्थलाभश्चेत्यलम् ।

स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्—अत्र परिभाषाया ज्ञापकः “नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु” इति सूत्रे पृथिव्यादि-पर्युदात्तान्यथा पृथिव्यादीनामनुदात्तादित्वाभावादप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । अत एव “तुरनुमो नद्यजादी” “अचः कर्तृयकि” इत्यादावजादौ अच इत्यादेश्चातिथ्यम् । अत एव राजवतीत्यादौ नलोपस्याऽसिद्धत्वादन्यतोऽशब्दत्वादन्यतोऽप्यस्याऽस्वरोनोदशिवत्वानित्यत्र “ह्रस्वनुङ्भ्यामि” इति मनुबुदात्तत्वञ्च नेत्याकरः ।

चञ्चेव चञ्चेत्यत्र कनि कनो लुपि प्रत्ययलक्षणेन नित्वात् “जित्यादिर्नित्यम्” इत्येव सिद्धे “सञ्ज्ञायामुपमानम्” इदं सूत्रं व्यर्थं सत् ज्ञायति-“चित् स्वरविधौ प्रत्ययलक्षणञ्च” इति ।

सतिशिष्ट इति—७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

४—भूपतिः—भुवः पतिः भूपतिः अत्र “समासस्य” इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे ततश्च “पत्यावैश्वर्ये” इति सूत्रेण प्रकृतिस्वरे प्राप्ते “न भूवाक्चित्त्रिषु” इति तन्निषेधे ‘भूपतिः’ इति भवति ।

दूरादागतः—अत्र प्रयोगे य, अथ, यञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, एतदन्तानां गतिकारकोपपदात् परेषामन्त उदात्तः स्यादित्यर्थक “थाऽथक्काऽजश्चित्रकाणाम्” इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे ‘दूरादागतः’ इति भवति ।

फलकपुरम्—फलकपुरमित्यत्र “पुरे प्राचाम्” इति सूत्रेण पुरे परेऽनुदात्तत्वे प्राप्ते “न हास्तिनफलकमार्देयाः” इति सूत्रेण तन्निषेधे “समासस्य” इति सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे ‘फलकपुरम्’ इति भवति ।

सुवीरेण—अत्र “वीरवीर्यौ च” इत्यनेन सूत्रेणाऽनुदात्तत्वे ‘सुवीरेण’ इति भवति ।

ते निवे

यात्

सौवर्

स रस

"अ

नो

र्युदा

व

ध्याति

या इ

।

दि

-।

।

।

।

।

।

।

।

।

।

।

।

।

।

अकार्णवेष्टकिकम्—कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकम् नकार्णवेष्टकिकम् अकार्णवेष्टकिकम् इत्यत्र "सम्पादिनि" इति सूत्रेण ठञि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे "सुपोधातुप्रातिपदिकयोः" इति सूत्रेण सुपो लुकि "ठस्येकः" इति सूत्रेण ठस्येकादेशे "अचोऽङिणति" इति सूत्रेणाऽयचो वृद्धौ कार्णवेष्टकिकशब्दः निष्पन्नः ततश्च नञ् समासे "नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहिताऽलमर्थस्तद्धिताः" इति सूत्रेणान्तोदात्ते "अकार्णवेष्टकिकम्" इति भवति ।

५—बहुव्रीहिकः—अत्र बहुशब्दस्य "फिषेन्त उदात्तः" इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते "वहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि" इति सूत्रेण नञः परस्य उत्तरपदस्य इव स्वरविधानेन "नञ्सुभ्याम्" इति सूत्रेणोत्तरपदस्याऽन्तोदात्ते "बहुव्रीहिकः" इति भवति ।

प्रतिजनः—इत्यत्र "प्रतेरंश्वाद्यस्तत्पुरुषे" इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते 'प्रतिजनः' इति भवति ।

नह भोदयसे—इत्यत्र "तिङ्ङतिङः" इति सूत्रेण निघातस्वरे प्राप्ते "नह प्रत्यारम्भे" इति तन्निषेधे "तास्यनुदात्तेर्नाङददुपदेल्लसार्वधातुकमनुदात्तमनङ्ङिङोः" इति सूत्रेण से इत्यस्य निघाते ततश्च मध्योदात्ते पदे "नहभोदयसे" इति भवति ।

जातु भोदयसे १२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

काष्ठाध्यापकः—इत्यत्र "मयूरव्यंसकाद्यश्च" इति समासे काष्ठादयोऽद्भुतपर्यायाः सन्तः पूजनवचना भवन्ति तेन "पूजनात्पूजितमनुदात्तम्" "काष्ठादिभ्य इति वक्तव्यम्" इत्यनेनाऽनुदात्ते "काष्ठाध्यापकः" इति भवति ।

१६३१

१—ऋकता गणेन । त्राध्वं नो देवाः । या खर्वण पिबति तस्यै खर्वः । निष्टक्यम् । अवयाः । प्रण आयूषि तारिषत् । कुशिकासो अवश्यवः । सोमः सधस्यम् । पीतवी सोमस्य वावृधे । ददिर्गाः । पाथ्यो वृषा । रथोरभूत् ।

एषां मध्ये नवसु प्रयोगेषु यानि विशेषकार्याणि तानि शास्त्रनिर्देशपुरस्सरं लेखयानि

२—नेतराच्छन्दसि । उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ।

१८

यच्चितुपरं छन्दसि । ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य :

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि

३—एकश्रुतिः । सन्नतरः । उपग्रहः । नप् ।

एषां शब्दानामर्थाः प्रदर्शनीयाः

४—हिसन्ति । इन्धानः । जाया । स्वाहा । त्रिभिष्ट्वं । मद्रसविषम् । महाब्रीहिः । मल्लग्रामः । उपकूलम् । देवमित्रः । यो भुङ्क्ते काष्ठाध्यापकः । आग्नेयः ।

एषां मध्ये नवसु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपादनीयाः

प्रश्नोत्तराणि—

१—ऋकता गणेन—अयस्मयादीनिच्छन्दसि साधूनि भवन्तीत्यर्थक “अयस्मयादीनि छन्दसि” इति सूत्रस्थायस्मयादिगणे ऋकतेत्यादि तात् “उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यम्” इति वार्तिकबलात् सत्यां पदसंज्ञा “चेः कुः” इत्यनेन कुत्वे भसंज्ञायाम् जातायां जश्वाऽभावे “ऋकता” इति सिद्धिः कुतः जश्वविधानार्थायाः पदसंज्ञायाः भस्वसामर्थ्येन बाधात् । अन्त्यजश्वमेव स्यात् कुत्वं न स्यादितिष्टप्रयोगहानिः स्यात् । अतः पदत्वात्कुत्वं भस्वजश्वाऽभाव एव । नचात्र “अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा” इति न्यायम्बाधित्वोभयसंज्ञाविधाने किम्प्रमाणमानन्तर्यादेकैव स्यादिति वाच्यम् उभयसंज्ञान्यपीति वार्तिकबलात् ।

ग्राध्वं नो देवाः—१० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः—इत्यत्र “षष्ठ्यर्थे चतुर्थाति वाच्यम्” इत्यनेन षष्ठिस्थाने चतुर्थी “तस्यै” इति तेन “या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः” इति भवति ।

निष्टकर्मम्—निमुपसर्गपूर्वककृत-धातोः “ऋदुपधाच्च” इति सूत्रेण क्यपि प्राप्ते तम्प्रबाध्य “छन्दसि निष्टकर्मदेवहूयप्रणीयोज्ञीयोच्छिष्यस्तर्थाध्वर्यखनखान्यदेवयज्यापृच्छयप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृष्ठानि” इति सूत्रेण निपातनात् ण्यति प्रत्यये आद्यन्तयोर्विपर्यासे निषत्वे गुणे रपरे षट्त्वे विभक्तिकार्ये “निष्टकर्मम्” इति भवति ।

अवयाः—अवपूर्वक्यधातोः “अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च” इत्यनेन निपातनात् उस्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे ङित्वाङ्लोपे सम्बुद्धयेकवचने सौ निपातनात् दीर्घे सुलोपे रुत्वे विसर्गे च “अवयाः” इति भवति । नन्विदं सूत्रं व्यर्थम् “मन्त्रे श्वेतवहो” इत्यादिना उस्मि कृते सौ “अत्वसन्तस्य चाऽधातोः” इति दीर्घे रुत्वे विसर्गे अवयाः, श्वेतवाः इत्यादिसिद्धमिति चेन्न सम्बुद्धिग्रहणस्य “अत्वसन्तस्य चाधातोः” इति सूत्रेऽधिकारात् सम्बुद्धौ अवयाः इत्यादौ अत्वसन्तस्येति सूत्रस्याऽप्रवृत्तेरिति दिक् ।

प्रण आयूंषि तारिषत्—२३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

कुशिकासो अवस्यवः—अत्र प्रयोगे “एङः पदान्तादति” इति सूत्रेण पररूपे प्राप्ते तम्प्रवाध्य “अव्याद्वद्याद्वक्रमुरत्रतायमवन्त्ववस्युषु च” इति सूत्रेण प्रकृतिभावे “कुशिकासो अवस्यवः” इति भवति ।

सोमः सधस्थम्—सह तिष्ठतीति सधस्थ इति विग्रहे सहपूर्वकस्थाधातोः “आतोऽनुपसर्गे कः” इति कप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे आर्द्धधातुक्त्वे “आतो लोप इटि च” इत्याकारस्य लोपे “सधमादस्थयोऽङ्कुन्दलि” इति सूत्रेण सहस्य सधादेशे विभक्तिकार्ये ‘सधस्थम्’ इति सिद्धम् ।

पीत्वी सोमस्य चावृधे—पिबतेः क्त्वा प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे आर्द्धधातुक्त्वे “धुमास्थागापाजहातिसां हलि” इति सूत्रेण पञ्चरोत्तराकारस्येकारे पीत्वा इति जाते “स्नात्क्यादयश्च” इति सूत्रेणाकारस्येकारे ‘पीत्वी’ इति भवति ।

ददिर्गाः—दाधातोः “आद्गमहनजनः किकिनौ लिट् च” इति सूत्रेण कप्रत्यये लिङ्वद्भावे च अनुबन्धलोपे लिङ्वद्भावात् द्वित्वे अभ्यासत्वे ह्रस्वे “आतो लोप इटि च” इत्याकारलोपे ददि इत्यस्मात् सौ रुत्वे विसर्गे “ददिः” इति भवति । अत्र किकिनोः स्थाने तिवादयस्तु न लिङ्वदितिदेशेन स्वरूपाऽबाधेनैव कार्यातिदेशात् ।

पाथ्यो वृषा—पाथसिजले भवः पाथ्यः इति विग्रहे “पाथो नदीभ्यां ड्यणू” इति व्यण्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे ङित्वाङ्लोपे प्रातिपदिकत्वे विभक्तिकार्ये ‘पाथ्यः’ इति भवति ।

रथीरभूत्—रथोस्याऽस्तीति रथीरिति विग्रहे रथशब्दात् “छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ” इति सूत्रेण ईप्रत्ययेऽकारस्य लोपे रथीशब्दात् सौ रुत्वे विसर्गे “रथीः” इति सिद्धम् ।

२—नेतराच्छन्दसि—इतरशब्दात्परयोः स्वमोरदुडादेशो न स्याच्छन्दसि इत्यर्थः उदाहरणञ्चात्र 'वार्जघ्नमितरम्' इति ।

“उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य” इति सूत्रस्वरूपम् उदात्तस्थाने स्वरितस्थाने च यो यण् ततः परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितः स्यादित्यर्थः । अभ्यभि हि । स्वरितयणः—खल्वव्याशा । इत्युदाहरणानि ।

यद्धितुपरं छन्दसि—इति सूत्रस्वरूपम् । यद्धितुपरं तिष्ठन्तं नाऽनुदात्त इत्यर्थः । ‘उदसृजो यदङ्गिरः’ ‘उशन्ति हि’ ‘आख्यास्यामि तु’ इत्युदाहरणानि ।

अध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य—इति सूत्रस्वरूपम् । धकारयकारपूर्वो नो न्योच् स उदात्तः स्यात् । इत्यर्थः । अन्तर्द्धा । छाया । माया । जाया इत्युदाहरणानि ।

३—एकश्रुतिर्नाम—उदात्तादीनां स्वराणामविभागेनाऽवस्थानमेकश्रुतिः

सन्नतरः—अनुदात्ततरः इत्यर्थः ।

उपग्रहः—परस्मैपदात्मनेपदे ।

नए—नपुंसकम् ।

४—हिसन्ति—अत्र “स्वपादिहिसामच्यनिटि” इति सूत्रेण लक्षणाधुक्ते परे वैकल्पिकाऽधुदात्ते “हिसन्ति” पक्षे प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तत्वं “हिसन्ति” इति भवति ।

इन्धानः—२१ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

जाया—२१ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

स्वाहा—इत्यत्र “निपाता आधुदात्ताः” इति सूत्रेणाधुदात्तत्वे ‘स्वा’ इति भवति ।

त्रिभिष्टुम्—इत्यत्र “षट्त्रिचतुर्थ्यो हलादिः” इति सूत्रेण त्रिशब्दात् स्य हलादिविभक्तौऽनुदात्तत्वे मिसः उदात्तत्वं सिद्धयति । नात्र सूत्रे “अन्तोदात्ता इत्यस्याऽनुवृत्तिः । अनुवृत्तौ पञ्चानां नवानां चतुर्णामित्यत्र न स्यात् । “नः खयायाः” इत्याधुदात्तत्वात् । नो तर्हि क्व स्यात् सप्तानामष्टानाम् । अत्र सप्ताष्टशब्दौ धृतादित्वादेव “धृतादीनाञ्च” इत्याधुदात्ताविति दिक् ।

मद्रसविधम्—मद्रस्य सविधम् मद्रसविधमित्यत्र षष्ठीसमासे “समा”

रूपम् स्यात् इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रवाच्य सामीप्यार्थेषु सविधादिषूत्तरपदेषु पूर्व-
पदं प्रकृत्या स्यात्तत्पुरुषे इत्यर्थक "सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सा-
मीप्ये" इति सूत्रेण पूर्ववदप्रकृतिस्वरे 'मट्सविधम्' इति । अत्र मटशब्दो रग-
न्तोऽन्तोदात्तः इति बोध्यम् ।

महाव्रीहिः—महांश्चासौ व्रीहिरिति विग्रहे समाप्ते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वे
सुपो लुकि "आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः" इति सूत्रेणात्वे "समा-
सस्य" इति सूत्रेणान्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रवाच्य "महान् व्रीह्यपराहूणगृष्टीष्वा-
सजावाल भारभारत हैलिहिलरौरवप्रवृत्तेषु" इति सूत्रेण व्रीहिपरे मह-
च्छब्दस्य प्रकृतिभावे "महाव्रीहिः" इति अत्र महच्छब्दोऽन्तोदात्तः इति ज्ञेयम् ।

मल्लग्रामः—मल्लानां ग्राम इति विग्रहे समाप्ते सुपो लुकि "समासस्य"
इति सूत्रेणान्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रवाच्य "ग्रामेऽनिवसन्तः" इति सूत्रेण ग्रामे परे
पूर्वपदस्योदात्तत्वे मल्लग्रामः इति भवति ।

उपकूलम्—कूलस्य समीपमिति विग्रहेऽध्ययीभावसमाप्ते कूलादीन्युत्त-
रपदान्याद्युदात्तानि स्युरित्यर्थक "कूलतीरतूलमूलशालाऽक्षसमम-
व्ययीभावे" इति सूत्रेणाद्युदात्तत्वे उपकूलम् इति भवति ।

देवमित्रः—इत्यत्र मित्राजिनयोरुत्तरपदयोरन्त उदात्तः स्यात् बहुव्रीही
संज्ञायामित्यर्थक "संज्ञायां मित्राऽजिनयोः" इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते देव-
मित्रः इति भवति ।

यो भुङ्क्ते—अत्र यो इति प्रतिपदिकस्वरेणान्तोदात्तः ततश्च "तिङ्ङति-
ङः" इति सूत्रेण निघाते प्राप्ते "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति सूत्रेणाऽनुदात्तनिघे
'यो भुङ्क्ते' इति भवति ।

काष्ठाऽध्यापकः—२७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

आग्नेयः—अग्निशब्दात् "अग्नेर्ढक्" इति सूत्रेण ढकि प्रत्यये तद्धितान्त-
त्वात्प्रतिपदिकत्वे सुपो लुकि आद्यचो वृद्धौ ढस्य "आग्नेयीनीयियः फढख-
छ्वां प्रत्ययादीनाम्" इति सूत्रेण ढस्यैयादेशे विभक्तिकार्ये "कितः" इति
सूत्रेणाऽन्तोदात्ते 'आग्नेयः' इति भवति ।

१४३२

१—मनुष्वदग्ने । दाति प्रियाणि । ब्रह्मवाचम् । गृध्राय जिह्वया मधु ।

दातवा उ । अनुसखासयूथयः । मधव्यः । कथा दाशेम । स त्वात्रा
ईषा अक्षो हिरण्ययः । अस्मे प्रयन्धि । अश्वायन्तो मधवन् । रणे
एषां मध्येऽष्टसु प्रयोगेषु यानि वैदिकप्रक्रियाकार्याणि तानि श्रु-
त्वा निर्देशपुरःसरं प्रदर्शनीयानि

२—ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे । स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ । अन्त्ये
अ तवै युगपत् । नन्विषयस्यानिसन्तस्य । त्य

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि वा

३—शिट् । अवग्रहः । न्यूह्नाः । यद्बृत्तम् ।

एषां शब्दानामर्था लेख्याः

४—वोश्वाः । चिकीर्षकः । सर्वे । वंहिष्ठः । पटुपटुः । कौञ्जायना
आहवनीये पाणिन्युपज्ञम् । पञ्चदिष्टिः । गोपालः । सुग्रीव
आवसथः । हन्त प्रविश । कार

एषां मध्येऽष्टसु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपादनीयाः आह

५—गतिकारकोपपदात्कृदिति सूत्रे कृद्ग्रहणप्रयोजनं प्रतिपादनीयम् आह

प्रश्नोत्तराणि—

१—मनुष्वदग्ने—मनुषा तुल्यम्—‘मनुष्वत्’ अत्र “जनेरसिः” वा
विहितः उसि प्रत्ययो बाहुलकान्मनेरपि भवति ततश्च उसि मनुष् इत्यत्र भत
“आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वे तुल्यार्थे सति प्रत्यये “यच्चि भम्” इति शा-
लात्—“नभोऽङ्गिरोमनुषां वेत्युपसंख्यानम्” इति वार्तिकेन वति उपसं-
नात् ‘मनुष्वत्’ इति सिद्धम् । हुलं

दाति प्रियाणि—दाघातोः लटि तिपि शपि “बहुलं छन्दसि” इत्य-
अदादिभिन्नेऽपि कचिल्लुकू तेनात्रादादिभिन्नेऽपि शपो लुकि “दाति” इति जसि
द्धम् लोके तु ‘ददाति’ इति भवति ।

ब्रह्मवाद्यम्—ब्रह्मोपपदाद्ब्रह्मदाघातोः “छन्दसि निष्टक्यं देवहूयप्रणी-
त्रोयोच्छिष्यमर्यस्तर्थाध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषोध्यब्रह्म-
वाद्यभान्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि” इत्यनेन ब्रह्माणि वदेष्यति अनुबन्धा-
आयचो ब्रह्मो विभक्तिकार्यं “ब्रह्मवाद्यम्” इति सिद्धम् । उदात्ते

गृभाय जिह्वया मधु—ग्रहधातोः लोटि सिपि सेहौ इनाप्रत्यये शानज

तूतायान्ते "छन्दसि शायजपि" इति सूत्रेण शनः शायनादेशोऽनुबन्धलोपे सम्प्रवा-
नन् । रणे पूर्वकूपे "हृग्रहोर्भक्ष्छन्दसि" इति हस्य भकारे "गृभाय" इति सिद्धम् ।
निशलोके 'गृहाण' इति भवति ।

दातवा उ—दा धातोः तुमर्थे "तुमर्थं सेसेनसे ऽसेनकसेकसेन-
स्येअध्येअध्येनूकध्येकध्येनूशध्येशध्येनूतवैतवेङ्कतवेनः" इति सूत्रेण तवै प्र-
त्यये दातवै + उ इति जाते आयादेशो 'लोपः शाकल्यस्य' इति यलोपे 'दात-
वा उ' इति सिद्धम् ।

अनुसखा सयूथयः—१५ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

मधव्यः—१५ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

कथा दाशेम—केन प्रकारेण पृच्छसि इत्यर्थे किमशब्दात् "था हेतौ च
छन्दसि" इत्यनेन किमस्था प्रत्यये तस्य "प्राग्दिशो विभक्तिः" इत्यधि-
काराद्विभक्तिसंज्ञायां "किमः कः" इति कादेशो 'कथा' इति सिद्धम् ।

स तूताय—तुः इति सौत्रो धातुस्तस्मात्तिलटि तिपि णलादेशोऽनुबन्धलोपे
आर्द्धधातुत्वे द्वित्वे वृद्धौ आवादेशो "तूताय" इति स्थिते "तुजादीनां दीर्घोऽ
भ्यासस्य" इत्यभ्यासस्य दीर्घे, 'तूताय' इति सिद्धम् ।

ईषा अक्षो हिरण्ययः—इत्यत्र "ईषा अक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभा-
वो वक्तव्यः" इति वार्तिकेन प्रकृतिभावे 'ईषा अक्षो हिरण्ययः' इति भवति ।

अश्मे प्रयन्धि—प्रपूर्वक्यमूधातोर्लोपि सिपि "सेर्ह्यपिचव" इति हि
इत्यादेशो शपि छन्दसि पक्षे पित्वादङित्वे "अङितश्च" इति हेर्धि इत्यादेशो 'व-
हुलं छन्दसि' इति शपो लुकि "प्रयन्धि" इति भवति ।

अश्वायन्तो मग्रचन्—अश्वशब्दात्, क्यच्यनुबन्धलोपे "अश्वायस्या-
त्" इति सूत्रेणादादेशो 'अश्वाय' इति जाते लटि लटः स्थाने शत्रादेशोऽनुबन्धलोपे
जसि विभक्तिकार्ये 'अश्वायन्तः' इति सिद्धम् ।

२—ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे । इति सूत्रस्वरूपम् । ह्रस्वात्परस्य च-
न्द्रशब्दस्योत्तरपदस्य सुडागमः स्यान्मन्त्रे । इत्यर्थः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ।
सुश्चन्द्र दस्म । इत्युदाहरणम् ।

स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ । इति सूत्रस्वरूपम् । अनुदात्ते पदादौ परे
उदात्तेन सदैकादेशः स्वरितो वा स्यात् । इत्यर्थः । वी इदं ज्योतिर्हृदये । अस्य

इलोको दिधीयते । इत्युदाहरणम् ।

अन्तश्च तत्रै युगपत् । इति सूत्रस्वरूपम् । तत्रै प्रत्ययान्तस्याऽऽन्त
युगपदुदात्तौ स्तः । इत्यर्थः । हर्षसे दातवा उ । इत्युदाहरणम् ।

नन्विषयस्याऽनिसन्तस्य । इति सूत्रस्वरूपम् । इसन्तवर्जितस्य नि
नपुंसकस्याऽऽदिरुदात्तः स्यात् । इत्यर्थः । वने न वायः । इत्युदाहरणम् ।

३—शिङ्—सर्वनाम ।

अवग्रहः—अवगृह्यते = विच्छिद्य पठ्यते इति “अवग्रहः” ।

न्यूह्वाः—षोडश ओंकाराः ।

यद्बृत्तम्—यच्छब्दनिष्पन्नः ।

४—वोश्वाः—“बहुवचनस्य वस्नसौ” इत्यत्र “अनुदात्तं सवमा
दादौ” इत्यस्याऽधिकारात् ‘वस्’ इत्यस्याऽनुदात्तत्वे अशोः कनिति व्युत्पादनात्
शब्दस्यापि आद्युदात्तत्वे उक्ते “एङः पदान्तादति” इति पूर्वरूपे
कादेश उदात्तेनोदात्तः” इति सूत्रेण स्वरिते ‘वोऽश्वाः’ इति भवति ।

चिकीर्षकः—चिकीर्षेति सन्नन्ताण्युलि तस्यानुबन्धलोपेऽकादेशे पर
सन्तो लोपे “लिति” इति सूत्रेणकारस्योदत्तत्वे ‘चिकीर्षकः’ इति । नच
कर्तव्येऽल्लोपरय स्थानिवत्त्वम् “स्वरदीर्घ्यलोपेषु लोपाऽजादेश एव
स्थानिवत्” इति निषेधात् । नच स्वरस्य नित्यत्वेन “परनित्यान्तरङ्गापवा
नामुत्तरोत्तरं षलीय” इति न्यायेन कथं परत्वादल्लोप इति वाच्यम्
न्तरस्य प्राप्त्या तस्याऽनित्यत्वात् ।

सर्वे—सर्वशब्दाज्जसि विभक्तिकार्ये “सर्वस्य सुपि” इति सूत्रेण
सर्वशब्दस्याद्युदात्तत्वे ‘सर्वे’ इति ।

बंहिष्ठः—अतिशयेन बहुलः बंहिष्ठः इति व्युत्पत्तौ बहुलशब्दात्
शायने तमविष्टनौ” इति सूत्रेण बहुलशब्दात् इष्टन् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे
स्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बहि
त्रपद्वाघिवृन्दाः” इति सूत्रेण बंहिरादेशे नित्यत्वात् “जिनत्यादिनि
इत्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते तम्प्रबाध्य “हिष्ठवत्सरतिशथ्यान्तानाम्” इति
न्तोदात्ते ‘बंहिष्ठः’ इति सिद्धम् ।

पटुपटुः—इत्यत्र “प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्याऽन्तः उदात्तः”

सूत्रेणाऽन्तोदात्ते 'पटुपटुः' इति भवति । ननु "कर्मधारयवदुत्तरेषु" इति कर्मधारयवद्भावादेव "समासस्य" इत्यन्तोदात्तत्वे सिद्धे व्यर्थमिदमिति वाच्यम् तस्य पाणिनीयात्पूर्वं प्रवृत्तत्वेनाऽदोषात् ।

कौञ्जायनाः—कुञ्जस्याऽपत्यानि बहूनि इति कुविग्रहे "गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च-
श्चफञ्" इति चफञ्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सुपो लुकि-
फस्यायनादेशे वृद्धौ "व्रातच्फञोरस्त्रियाम्" इति सूत्रेण व्यप्रत्यये "ऽयाद-
यस्तद्राजाः" इति तद्राजसञ्ज्ञायां "तद्राजस्य बहुषु" इति लुकि विभक्तिका-
यें "तद्धितस्य" इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते "कौञ्जायनाः" इति । ननु "चित्तः
सप्रकृतेर्वहकजर्थम्" इत्यनेनैवाऽन्तोदात्तत्वे सिद्धे सूत्रमिदं व्यर्थमिति वाच्यम्
नित्स्वरबाधनार्थमस्याऽवश्यकत्वात् ।

आहवनीये—बाहुलकादधिकरणे प्रीणानार्थात् कर्मणि वा अनीयर प्रत्यये ततो
गतिसमासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरे "उपोत्तमं रिति" इति सूत्रेणोपोत्तमस्योदात्तत्वे
'आहवनीये' इति भवति ।

पाणिन्युपज्ञम्—उपज्ञायते इत्युपज्ञम् अत्र "आतश्चोपसर्गं" इति क-
र्मण्यङ् पाणिनिशब्द इत्यत्वादाद्युदात्तः ततश्च पाणिनेरुपज्ञा इति षष्ठीतत्पुरुषे स-
मासे 'उपज्ञोपक्रममि'त्यादिना नपुंसकत्वे "समासस्य" इत्यन्तोदात्ते प्राप्ते
तत्प्रवाच्य "मात्रोपज्ञोपक्रमञ्छाये नपुंसके" इति सूत्रेण पूर्वपद कृतिस्वरे
"पाणिन्युपज्ञम्" इति सिद्धम् ।

पञ्चदिष्टिः—अत्र "समासस्य" इति सूत्रेण नित्यान्तोदात्तत्वे प्राप्ते 'दि-
ष्टिवितस्त्योश्च' इति सूत्रेण वैकल्पिकपूर्वपदप्रकृतिस्वरे "पञ्चदिष्टिः" इति ।
पक्षे अन्तोदात्ते 'पञ्चदिष्टिः' इति भवति ।

गोपालः—गाः पालयतीति गोपालः इत्यत्र "गोतन्तियवं पाले" इति
सूत्रेण पालशब्दे परे आद्युदात्ते 'गोपालः' इति ।

सुग्रीवः—इत्यत्र "कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घञ्च" इति सूत्रेण उत्तरपदस्या-
नित्युदात्तत्वे 'सुग्रीवः' इति ।

आवसथः—२२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

हन्त प्रविश—१६ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

५—गतिकारकापपदात्कृत्—अत्र सूत्रे कृद्ग्रहणद्विमर्थम् । निर्गतः

कौशम्ब्याः निष्कौशाम्बिरित्यत्र माऽभूत् । नैतदस्ति । 'यत्क्रियायुक्ताः प्रादया
प्रत्येव गत्युपसर्गसङ्ज्ञा' भवन्ति । न च कौशाम्बीशब्दमप्रति क्रियायोगः कार
क्रियायामेव सम्भवति । उपपदमपि धात्वधिकारे सप्तमीनिर्दिष्टं प्रत्ययनिमित्त
च्यते । तदेवं गत्यादिभिरपि क्रियावाच्युत्तरपदमाक्षिप्यते, धातोश्च क्रियावाचित
तस्माच्च द्वये प्रत्ययाः तिष्ठः कृतश्च । तत्र तिष्ठन्तेन समासाऽभावात् कृदन्त
सम्भवति । 'अनुव्यञ्जत्' इत्यत्र तु न गतित्वनिबन्धन समासः किं
'सुप' इति योगविभागात् समासः । तस्मान्नार्थः कृद्ग्रहणेनेत्यत आह—
"कृद्ग्रहणं विस्पष्टार्थमिति" य एवं प्रतिवक्तुमसमर्थस्तं प्रति विस्प
क्रियते इत्यर्थः ।

ननु विस्पष्टार्थमपि क्रियमाणे कृद्ग्रहणे आमन्ते न प्राप्नोति प्रपचिततरा
ततश्च समासस्वरं बाधित्वाऽव्ययस्वरः एव स्यादत आह—'प्रपचिततरामित
दि । इत्येक इत्यस्य कृद्ग्रहणं विस्पष्टार्थमित्यादिना कृत्स्नेन सम्बन्धः । तदय
कृद्ग्रहणं विस्पष्टार्थम् । आमन्ते च दोषाऽभाव इति केचिदाचार्या व्याचक्षते इ
प्रपचितिदेश्यार्थं त्विति । आदिशब्देन 'प्रपचति कल्पं', 'प्रपचतिदेशीयः'
चतिरूपमित्येतेषां त्रयाणाम् ग्रहणम् । प्रपचतिदेश्यादौ अर्थः प्रयोजनं यस्य तत्
कम् । अयमभिप्रायः न विस्पष्टार्थं कृद्ग्रहणम् । अपि तु प्रपचतिदेश्यादौ यत्र
शिष्टं स्वरान्तरं नास्ति तत्रापि स्वरो माभूदव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर एव यथा स
त्येवं सप्रयोजनमाहुः ।

अत्र हरदत्तः—इदं तु वक्तव्यम् । प्रपचिततरामित्यादौ तरबन्तेन स
पश्चादाम् भवन् प्रत्ययग्रहणपरिभाषया पंचतितरस्यैव धान्तत्वात्तत एव स्या
तत्र को दोषः । सोपसर्गस्य धान्तस्यैकपदाऽभावादाम् । प्रपचिततरां देव
त्यादौ आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके इत्येष विधिर्न स्यात् शेषनिघातश्च ।
ब्दस्य न स्यादभिन्नपदत्वात्तस्मात् प्रशब्दस्यामन्तेन समासोऽङ्गीकर्तव्यो न
बन्तेन, तत्र समासत्वात् समुदायस्य प्रातिपदिकत्वे विभक्तावैकपदं भवति,
तु दोषप्रसङ्गात् कृद्ग्रहणमपि वक्तव्यमिति भाष्ये स्थितम् । एवं स्थिते प्रप
देश्यादौ का गतिरिति जानन्तु सुधियः ।

१४३३

१—वृषणयसुः । वृत्रं हनति वृत्रहा । चक्राणां वृष्णिम् । अयं ममा

ददिर्गाः । ईश्वरा विलिखः । चनो दधीत नाद्यो गिरो मे । सो-
म्यो ब्राह्मणः । ब्रह्मसामं भवति । उपप्रयन्तो अध्वरम् । न मर्तः ।
त्मना देवेषु । देवासः । हरिवो मेदिनं त्वा ।

एषां मध्ये नवसु प्रयोगेषु यानि वैदिकप्रक्रियाकार्याणि तानि शा-
स्त्रनिर्देशपूर्वकं प्रदर्शनीयानि ।

१८

२—लोपस्त आत्मनेपदेषु । उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः । लघावन्ते
द्वयोश्च बह्वो गुरुः । आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि ।

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि ।

१०

३—सर्वस्य । ईड्यः । तिलाः । स्वाहा । आग्नेयः । आहवनीये । गो-
लवणम् । साङ्गादयसिद्धः । यूपदारु । तन्तुवायः । स्त्रीसमम् ।
कश्चिद्भुङ्क्ते । अनुपुरुषः ।

एषां मध्ये नवसु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपा-
दनीयाः ।

१८

४—तिङि चोदात्तवतीति सूत्रे तिङ्ग्रहणप्रयोजनं प्रतिपादनीयम् । ४

प्रश्नोत्तराणि—

१—वृषण्वसुः—वृषवर्षकं वसु यस्यासौ वृषण्वसुरित्यत्रान्तर्वर्तिनीं विभक्ति-
माश्रित्य पदत्वे सति नलोपे प्राप्ते वृषण्वसुश्चोदात्तः वसु—अश्व—एतयोश्च परतो
भं स्यात् इत्यर्थक—“वृषण्वस्वश्चयोः” इत्यनेन भत्वाद्वार्यते । अत एव
(भत्वादेव) “पदान्तस्य” इत्यनेन णत्वनिषेधोऽपि न भवति । “अल्लोपोऽनः”
इति सूत्रे “अङ्गस्य” इत्यधिकारात् “अल्लोपोऽनः” इत्यल्लोपो न अनङ्गत्वात् ।

वृत्रं हनति वृत्रहा—अत्र वाक्यांशे हनतीत्यत्र हन् धातोः कटि तिपि शधि
“अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुकि प्राप्ते “बहुलं छन्दसि” इत्यनेन
बाहुल्यात् शपो लुगभावे “हनति” इति भवति ।

चक्राणा वृष्णिम्—‘कृ’ धातोः लिटि तस्य स्थाने “लिटः कानजू चा”
“कसुश्च” इति सूत्रेण कानजादेशोऽनुबन्धलोपे द्वित्वे “उरत्” इत्यत्वे रपरत्वे
“ह्लादिः शेषः” इति रेफस्य लोपे “कुहोदचुः” इति चुत्वे यणादेशे णत्वे
टापि विभक्तिकार्यं ‘चक्राणा’ इति सिद्धम् ।

अद्य ममार—अत्र वाक्यांशे “ममार” इत्यत्र वर्तमानकालिकलटप्रयोग-

स्थानेऽपि “छन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इति सूत्रेण लिटि लिङ्निमित्तकत्वात्
“ममार” इति । पक्षे “मृयते” इति भवति ।

द्विर्गाः—२९ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

ईश्वरो विलिखः—अत्र प्रयोगांशे “विलिखः” इत्यत्र विपूर्वकचित्
धातोः तुमर्थे “ईश्वरे तोसुन्कसुनौ” इति सूत्रेण कसुन् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे
कित्वात् गुणाऽभावे “क्तातोसुन्कसुनः” इति सूत्रेणाव्ययत्वे अव्ययत्वात्
“अव्ययादाप्सुपः” इति सुपो लुकि ‘विलिखः’ इति । अत्र प्रत्ययलक्षणतः
“अत्वसन्तस्य चाऽधातोः” इति दीर्घस्तु न भवति “न लुमताऽङ्गस्य” इति
प्रत्ययलक्षणनिषेधात् ।

चनो दधीत नाद्यो गिरो मे—अत्र वाक्यांशे ‘नाद्यः’ इत्यत्र नद्यां
इति विग्रहे “पाथो नद्दीभ्यां ड्यण्” इति ज्यण्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे णित्वात्
नद्यो वृद्धौ द्वित्वाट्टिलोपे विभक्तिकार्ये ‘नाद्यः’ इति सिद्धम् ।

सोम्यो ब्राह्मणः—सोममर्हति इति विग्रहे “सोममर्हति यः” इति सूत्रे
सोमशब्दात् यप्रत्ययेऽकारस्य लोपे प्रातिपदिकत्वे सौ क्त्वे विसर्गे सोम्यः ई
भवति । यज्ञाह इत्यर्थः ।

ब्रह्मसामं भवति—ब्रह्मसाममित्यत्र तत्पुरुषादृच् स्यात् समासान्त इत्यर्थः
“अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि” इति सूत्रेण टचि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे शेषात्
“ब्रह्मसामं” इति सिद्धम् ।

उपप्रयन्तो अश्वरम्—अत्र प्रयोगे “पङ्कः पदान्तादति” इति सूत्रे
पूर्वरूपे प्राप्ते “प्रकृत्यान्तः पाद्मव्यपरे” इति प्रकृतिभावे ‘उपप्रयन्तो अ
श्वरम्’ इति भवति ।

नू मर्तः—६ पृष्ठे द्रष्टव्यम् । त्मना देवेषु—१९ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

देवासः—देवशब्दाज्जसि विभक्तावनुबन्धलोपे “आज्जसेरसुक्” इति
सूत्रेण जसोऽसुगागमेऽनुबन्धलोपे कित्वात् “माद्यन्तौ टकितौ” इति सूत्रे
कित्वादन्त्यादयः परत्वे पूर्वसवर्णदीर्घे सस्य क्त्वे विसर्गे “देवासः” इति सिद्धम् ।

‘हरिवो मेदिनं त्वा’—२० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

२—लोपस्त आत्मनेपदेषु—इति सूत्रस्वरूपम् । आत्मनेपदेषु यस्तस्य
स्तस्य छन्दसि विषये लोपः स्यात् इत्यर्थः । देवा अदुह । दक्षिणतः शये ।

इत्युदाहरणम् ।

उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः—उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात् तस्याऽनु-
दात्तस्याऽनुदात्ततरः स्यादित्यर्थः । सरस्वति शुतुद्रि । व्यचक्षयत्स्वः ।
इत्युदाहरणम् ।

लघावन्ते द्वयोश्च बह्वो गुरुः—अन्ते लघौ द्वयोश्च लघ्वोः सतोर्बह्वच्-
कस्य गुरुदात्तः स्यादित्यर्थः । कल्याणः कोलाहलः । इत्युदाहरणम् ।

आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि—आचार्योपसर्जनान्तेवासिनि परे दिक्-
च्छब्दाः अन्तोदात्ता भवन्ति इत्यर्थः । पूर्वपाणिनीयाः । इत्युदाहरणम् ।

३—सर्वस्य—अत्र “सर्वस्य सुपि” इति सूत्रेण सुपि परे सर्वशब्द-
स्याऽऽद्युदात्ते “सर्वस्य” इति भवति ।

ईड्यः—स्तुत्यर्थक ईड्-धातोः “ऋदृहोर्ण्यत्” इति ण्यति अनुबन्ध-
लोपे “ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः” इति सूत्रेण ण्यदन्तस्याऽऽद्युदात्तत्वे
‘ईड्यः’ इति भवति ।

तिलाः—अत्र “तृणधान्यानाञ्च द्वयषाम्” इत्यनेनाऽऽद्युदात्ते ‘तिलाः’
इति भवति ।

स्वाहा—३०-पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

आग्नेयः—३१ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

आहवनीये—३५ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

गोलवणम्—अत्र “गमेर्डोः” इति सूत्रेण ङोप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे द्वित्वादि-
लोपे षष्ठोऽसमासे “समासस्य” इत्यन्तोदात्तत्वे प्राप्ते “गाधलवणयोः प्रमाणे”
इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे जाते “गोलवणम्” पूर्वपदस्तु ङोप्रत्ययान्तोऽन्तो-
दात्त इति बोध्यम् ।

साङ्काश्यसिद्धः—“वुञ्जुणि” इत्यादिसूत्रेण सङ्काशशब्दात् ण्यप्रत्यये
तेनान्तोदात्तेऽनुबन्धलोपे आद्यचो वृद्धौ अकारस्य लोपे च ततः समासे ‘समा-
सस्य’ इति सूत्रेणान्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रबाध्य “सप्तमीसिद्धशुष्कपक्वबन्धे-
ष्वकालात्” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे ‘साङ्काश्यसिद्धः’ इति भवति ।
पूर्वपदस्त्वन्तोदात्तः ।

यूपदारु—यूपाय दारु इति यूपदारु अत्र समासे “समासस्य” इत्य-

न्तोदात्ते प्राप्ते “चतुर्थी तदर्थः” इति सूत्रेण चतुर्थ्यन्तस्य प्रकृतिभावे पूर्वपदप्रकृतिस्वरे “यूपदाक” इति भवति । अत्र निदिति दीर्घश्चेत्यनुवर्तमाने “कुयुभ्यां च” इति सूत्रेण पप्रत्यये दीर्घे च यूप इति जातः स । च नित्वादायुदात्त इति बोध्यम् ।

तन्तुवायः—१२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

स्त्रीसभम्—अत्र “सभायां नपुंसके” इति सूत्रेण पूर्वपदस्याऽन्तोदात्तत्वे ‘स्त्रीसभम्’ इति भवति ।

कश्चिद् भुङ्क्ते—अत्र प्रयोगे “तिङ्ङतिङः” इति सूत्रेण निघातस्य प्राप्ते “किं वृत्तं च चिदुत्तरम्” इति सूत्रेण तन्निषेधे ‘कश्चिद् भुङ्क्ते’ इति भवति ।

अनुपुरुषः—अन्वादिष्टः पुरुषः अनुपुरुषः इत्यत्र “पुरुषश्चाऽन्वादिष्टः” इति सूत्रेणान्तोदात्ते “अनुपुरुषः” इति भवति ।

४—तिङि चोदात्तवति—अत्र सूत्रे तिङ्प्रहणं किमर्थम् । उदात्तवतः परिमाणार्थम् । अन्यथा हि यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञाविधानात् । तिङ्प्रहणाऽभावे धातोरेव क्रियावाचित्वात् गतिर्ज्ञानिमित्तमिति धातावेवोदात्तवति निघातः प्रत्यये न स्यात् । कृते तु तिङ्प्रहणे यं धातुमप्रति गतित्वं तद्धटके तिङन्ते उदात्तवति परे इत्येवार्थो भवति । तेन यत्करोत्यादिलक्ष्ये धातोः शेषनिघातेन सत्यप्यनुदात्तत्वे तिङन्तस्य उप्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तत्वाद् गतेरेव निघातो भवतीति शम् ।

१६३४

१—अक्रन्नुषासः । मर्यः । अञ्जाः । पताति विद्युत् । मध्वा जभार । न म्लेच्छितवै । सुमङ्गलीरियं वधूः । तृचं सूक्तम् । अभ्रमाँ अप॥ इष्टोर्न देवान् । एषां मध्ये सप्तसु प्रयोगेषु यानि वैदिकप्रक्रियाकार्याणि तानि शास्त्रनिर्देशपूर्वकं प्रदर्शनीयानि । १४

२—तयोर्दाहिलौ च च्छन्दसि । स्वाङ्गशिष्टामदन्तानाम् । उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ।

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि ।

३—चिकीर्षकः । पन्थाः । धृतम् । कृषिः । अष्टाभिः । क । कुमारः । ४

श्रमणा । विश्वदेवः । अध्ययनपुण्यम् । गौरमुखः ।

एषां मध्ये सप्तसु प्रयागेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपादनीयाः, यथाशक्ति स्वरचिह्नानि च प्रदर्शनीयानि । १४

४—‘उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव’ इति सूत्रे प्रकृतिग्रहणप्रयोजनं प्रतिपादनीयम् । ३

५—यद्योभावप्रसन्धानमुकारादि परं पदम् । स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद्बुध्यक्तमुष्मणः ॥

इत्यस्य सुरुपष्टं व्याख्या कार्या । ५

६—विवृतिः । अयोगवाहाः । रङ्गः । स्वासी । नादी ।

एषामर्थाः स्पष्टीकरणीयाः । ५

प्रश्नोत्तराणि—

१—अक्रन्नुषासः—कृधातोरुक्तिं तस्य स्थाने क्षिप्रत्यये च्लौ “मन्त्रे घसहरणशवृदहाद्वृचूकृगमिजनिभ्यो लोः” इति सूत्रेण च्लेरुक्तिं “सार्वधातुकमपित्” इति द्विद्वद्भावेऽङ्गागमेऽनुबन्धलोपे “भेन्तः” इति ज्ञस्यान्तादेशे झेर्हित्वाद्गुणाऽभावे यणि “इतश्च” इतीकारस्य लोपे संयोगान्तलोपे ‘अक्रन्’ इति भवति ।

मर्यः—हकारेत्संज्ञक सृधातोः “छन्दसि निष्टक्यदेवहूयप्रणीयेन्नीयेच्छिष्यमर्यस्तर्थाध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छयप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योच्चार्यपृष्ठानि” इति सूत्रेण निपातनात् यत् प्रत्यये गुणे रपरे प्रातिपदिकत्वे सौ रुत्वे विसर्गे च कृते ‘मर्यः’ इति भवति ।

अब्जाः—अप्सुजाताः अब्जाः इत्यत्रापुपपदाज्जन् धातोः “जनसनखनक्रमगमो विट्” इति सूत्रेण विट्प्रत्यये विटः सर्वाऽपहारे ततश्च “विड्बूनोरनुनासिकस्यात्” इति सूत्रेणात्वे जश्चे विभक्तिकार्ये “अब्जाः” इति भवति ।

पताति विद्युत्—पतनार्थकलृकारेऽसञ्ज्ञकत्वात्धातोश्छन्दसि लेटि तिपि “लेटोऽडाटौ” इति सूत्रेण तिपः आडागमेऽनुबन्धलोपे ‘पताति’ इति भवति ।

मध्वा जभार—जकारेत् ‘ज्ञकहृधातोः लिटि तिपि णलि द्वित्वे अभ्यासकार्ये वृद्धौ रपरत्वे ‘जहार’ अत्र “हृग्रहोर्भश्छन्दसि” इत्यनेन हकारस्य भकारे ‘जभार’ इति । लोके ‘जहार’ इति भवति ।

न म्लेच्छित्तवै—म्लेच्छधातोः “कृत्यार्थे तवैकेन्यत्वनः” इति सूत्रेण तवै प्रत्यये इडागमे सौ विभक्तावव्ययत्वात् सोलोपे ‘म्लेच्छित्तवै’ इति भवति ।

सुमङ्गलीरियं वधूः—सुष्ठु मङ्गलम् सुमङ्गलम् “सुः पूजायाम्” इति समासः । सुमङ्गलमस्ति अस्यां वेति सुमङ्गलीरत्र “छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ” इत्यनेन सुमङ्गलशब्दात् मत्वर्थे ई प्रत्ययेऽकारस्य लोपे सौ सत्वे विसर्गे “सुमङ्गलीः” इति भवति ।

तृचं सूक्तम्—तिस्रः ऋचः यस्मिन् तत् तृचमिति विग्रहे “ऋकपूरवधूः पथामानक्षे” इत्यप्रत्यये “ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि” इत्यनेन ऋचि शब्दे परे त्रैः सम्प्रसारणे उत्तरपदादेलोपे च जाते ततश्च सौ अमादेशे पूर्वरूपे च “तृचम्” इति भवति ।

अभ्र आँ अपः—अत्र “आळोऽनुनासिकश्छन्दसि” इति सूत्रेण अकारे परे आळोऽनुनासिके “अभ्र आँ अपः” इति भवति । अत्र “उपदेशेऽजनुनासिक इत्” इति इत्संज्ञा तु न भवति सूत्रे उपदेशग्रहणात् इति ।

इष्टीनं देवान्—यज्धातोः क्त्वा प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “वचिस्वपियजादीनाङ्किति” इति सम्प्रसारणे षत्वे घुत्वे “इष्टीनमिति च” इति सूत्रेण ईनमन्तादेशे ‘इष्टीनम्’ इति भवति ।

२—तयोर्दाहिर्लौ च छन्दसि—इति सूत्रस्वरूपम् । इदं तदोर्यथासंख्यं स्तः । इत्यर्थः । इदा हि व उपस्तुतिम् । तर्हि । इत्युदाहरणम् ।

स्वाङ्गशिष्टामदन्तानाम् । इति सूत्रस्वरूपम् । स्वाङ्गवाचिनामदन्तानां सर्वनाम्नामादिरुदात्तः स्यात् । इत्यर्थः । कर्णाभ्यां छुबुकादधि । ओष्ठाविव मधु । विश्वो विहायाः ।

“उमे वनस्पत्यादिषु युगपत्”—एषु पूर्वोत्तरपदे युगपत्प्रकृत्या स्यात्, इत्यर्थः । वनस्पतिं वन आ । बृहस्पतिं यः । इत्युदाहरणम् ।

३—चिकीर्षकः—३४ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

पन्थाः—पथिन् शब्दात् सौ “पथिमश्चृभुक्तामात्” इत्यादादेशे “थोन्थः” इति न्यादेशे सत्वे विसर्गे ‘पन्थाः’ इत्यत्र “पथिमथोः सर्वनामस्थाने” इति सूत्रेणाऽयुदात्ते ‘पन्थाः’ इति भवति ।

घृतम्—अत्र प्रयोगे “घृतादीनाञ्च” इति सूत्रेणान्तोदात्ते ‘घृतम्’ इति भवति ।

कृषिः—अत्र “इगन्तानाञ्च द्वयवाम्” इति सूत्रेणाद्युदात्ते ‘कृषिः’ इति भवति ।

अष्टाभिः—अत्र “अष्टनो दीर्घात्” इति सूत्रेण भिषः उदात्तत्वे ‘अष्टाभिः’ इति भवति । सूत्रार्थश्च-दीर्घान्तादष्टनः परा सर्वनामस्थानविभक्ति-रुदात्ता भवति । अत्र चाष्टन् शब्दे प्राप्तं “भ्रूयुपोत्तमम्” इत्यपवाद्य घृता-दिस्वादन्तोदात्तत्वं स्यात् । एतेनोत्तरार्थमनुवर्तनार्हस्य च “अन्तो दात्तात्” इत्यस्यापि न प्रकृतसम्बन्धः प्रकृतसूत्रेदीर्घग्रहणात् । अष्टभिः इत्यत्र तु “भ्रूयु-पोत्तमम्” इत्यनेनैव स्वरः सिद्धो भवति ।

नन्वत्रापि “अष्टन वा विभक्तौ” इत्यनेनैवेष्टसिद्धौ विकल्पस्य च तद्-विधावभावादिति चेत्, युक्तम्—इहस्थमेव दीर्घग्रहणमात्वविकल्पमष्टनो ज्ञापयति । नो चेत् दीर्घग्रहणमेव व्यर्थं स्यात् । ज्ञापयति च कृतात्त्वनिर्देशस्य षट्संज्ञाम् । अन्यथा सावकाशोह्यात्वपक्षेऽष्टनः स्वरः परत्वादनात्वपक्षे षट्स्वरेणैव बाधिव्यते इति किं तर्हि दीर्घग्रहणेनेति शम् ।

ऊ—अत्र “किमोत्” इत्यति अनुबन्धलोपे तित्प्रत्ययस्यान्तः स्वरितः स्या-दित्यर्थक “तित्स्वरितम्” इत्यनेनान्तः स्वरिते “क्वाति” इति सूत्रेण किमः क्वा देशे ‘क्व’ इति भवति ।

कुमारश्रमणा—कुमारी श्रमणा कुमारश्रमणा अत्र “प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्” इति परिभाषया “कुमारः श्रमणादिभिः” इति सूत्रेण कुमारीशब्दस्य समासे पुंवद्भावे “समासस्य” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते “कुमारश्च” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे कुमारशब्दात् पचायच् विधा-नेन कुमारशब्दस्य “चित्” इत्यनेनान्तोदात्ते “कुमारश्रमणा” इति ।

विश्वदेवः—अत्र “समासस्य” इति प्राप्तमन्तोदत्तत्वावित्वा पूर्वपदप्र-कृतिस्वरेण प्राप्तस्याऽद्युदात्तस्यापवादभूतेन “बहुव्रीहौ विश्वं सञ्ज्ञायाम्” इति सूत्रेण पूर्वपदभूतस्य विश्वशब्दस्याऽन्तोदात्ते ।

“विश्वदेवः” इति भवति ।

अध्ययन पुण्यम्—अध्ययने पुण्यमिति विग्रहे “सुसुपा” इति सूत्रेण, सप्तमीति योगविभागाद् वा समाधे “सप्तम्याः पुण्यम्” इति सूत्रेण सप्तम्यन्तात्परस्य पुण्यइत्युत्तरपदस्याऽन्तोदात्ते ‘अध्ययनपुण्यम्’ इति भवति ।

गौरमुखः—गौरं (गौरवर्णं) मुखं यस्यासौ गौरमुखः इत्यत्र “मुखं स्वाङ्गम्” इति सूत्रेण मुखमित्युत्तरपदस्याऽन्तोदात्ते ‘गौरमुखः’ इति ।

४—उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव—इति सूत्रेऽसति प्रकृतिग्रहणे शब्दार्थात् परो षो णिनिस्तदन्ते उत्तरपदे आद्युदात्तं स्यात् । इत्यर्थो विज्ञायेत तथा च यत्रापि धातूपसर्गसमुदायाच्छब्दार्थात्परो णिनिस्तत्रापि स्यात् । “कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वपदस्यापि ग्रहणम्” इति परिभाषया णिञन्तोत्तरपदत्वाऽनपायात् । प्रकृतिग्रहणे तु न भवति । यत्र धातुर्नासौ शब्दार्थः यश्च शब्दार्थो धातूपसर्गसमुदायो न ततो णिनिर्विहितः इति भावः ।

५—यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम् ।

स्वरान्तं तादृशं विद्यात् यदन्यत् व्यक्तमृषमणः ॥

व्याख्या—यदीति—उकार आदिर्यस्य तत्पदं परं यत्र तत्र यद्योभावप्रसन्धानं संहिततयौत्परिज्ञानं तत्र तादृशपदमोभावान्तं विद्याज्जानीयात् । त्वेति । प्रेत्युदाहरणम् । तत्राद्ये विसर्गान्तं स्वरान्तम् । अन्त्ये ओकारान्तं तत् ।

ननु एवं तर्हि ऊष्मनिष्पन्नस्यापि तादृशतत्त्वापत्तिरिति चेत्तत्राह—यदिति । ऊष्मणो व्यक्तं निष्पन्नं यत्स्वरान्तं ततोऽन्यत्, तत्तु न तथेति भावः ।

६—विवृतिः—विवेकेन पृथग्भावेन वर्तते इति विवृतिः । तथा च नारदः—

“विवृतयश्चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम् ।

अक्षराणि नियोगेन तासां नामानि मे शृणु ।

ह्रस्वादिर्घत्साऽनुसृता वत्साऽनुसारिणी चाग्रे ।

पाकवत्युभयोर्ह्रस्वा दीर्घवृत्ता पिपीलिका” । इति ॥

अयोगवाहाश्च—वाहयन्ति निर्वाहयन्ति कार्यमिति वाहाः, अविद्यमानो योगो वर्णसमाप्तायेषु पाठो येषान्तेऽयोगास्ते च ते वाहा अयोगवाहा अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीया इति ।

रङ्गः—रज्यतेऽनेन पूर्वो वर्ण इति रङ्गः । वर्णविशेषः । नकारस्य स्त्वे जाते योऽनुनासिको विधीयते स रङ्गः ।

श्वासी—श्वासप्रयत्नवान् इत्यर्थः ।

नादी—नादप्रयत्नवान् इत्यर्थः ।

१६३५

सूचना—सूत्रनिर्देशप्रसङ्गे समस्तसूत्रोत्प्रेषणमावश्यकम् ।

१—क्षेत्रस्य पतिना । त्राध्वं नो देवाः । अघायुः । वायवे पिबध्वै । समुद्रया मण्डसरसः । तं प्रतथा । एष स्य भानुः । रारन्धि । दक्षिणतः शये । मोषुणः ।

एषां मध्ये सप्तसु प्रयोगेषु यानि वैदिकप्रक्रियाकार्याणि तानि शा-
रु निर्देशपुरस्सरं प्रदर्शनीयानि । १६

२—प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे । ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा । किं क्रिया-
प्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् ।

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि ।

३—हिंसन्ति । मह्यम् । कल्याणः । आग्नेयः । त्रिभिष्टुवं । आपूप-
कः । आर्यब्राह्मणः । उपकृकोशी । उपकूलम् । प्रत्यंशुः । एषां मध्ये
सप्तसु प्रयोगेषु सूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपादनीयाः, स्वर-
चिह्नानि च प्रदर्शनीयानि । १७

४—“द्वित्रिभ्यां पादून्मूर्धसु बहुव्रीहौ” इति सूत्रेऽकृतसमासान्तस्य
मूर्धशब्दस्य ग्रहणे प्रयोजनं प्रतिपाद्य फिट्सूत्राणां पाणिनीयै-
रुपादेयत्वं समर्थनीयम् । ५

५—यमस्वरूपं सुस्पष्टं प्रतिपाद्यताम् । ४

६—अच्चेऽरुपृष्टा यणस्त्वीप्स्नेमरुपृष्टाः शलः स्मृताः ।

शेषाः रूपा हलः प्रोक्ता निबोधाऽनुप्रदानतः ।

अरुपृष्टादिस्वरूपप्रतिपादनपुरस्सरमस्य व्याख्या कार्या । ५

प्रश्नोत्तराणि—

१—क्षेत्रस्य पतिना—अत्र प्रयोगे समासाऽभावादप्राप्तविसृज्ज्ञकार्या
“षष्ठीयुक्तश्चन्द्रसि वा” इति सूत्रेण वैकल्पिकविसृज्ज्ञायाम् “आडो ना-

ऽस्त्रियाम्” इति सूत्रेण आङो नादेशे पतिना इति । एवञ्च “क्षेत्रस्य पतिना” इति भवति ।

त्राध्वं नो देवाः — १० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

अघायुः—परस्याधमिच्छतीत्यर्थे क्यचि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे ‘अध्वाघ-
स्यात्” इति सूत्रेणादादेशे ‘अघाय’ इति जाते तस्मात् “क्याच्छन्दसि” इति
सूत्रेण ‘उ’ प्रत्ययेऽकारस्य लोपे अघायु इत्यस्य प्रातिपदित्वे सौ रुत्वे विषर्गे ‘अ-
घायुः’ इति भवति ।

वायवे पिबध्यै—पाधातोः तुमर्थे “तुमर्थे सेसेनसेऽसेनक्सेक-
सेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्त्तवेनः” इति सूत्रेण श-
ध्यैन् प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे सार्वधातुकेत्वे शपि “पाघ्राध्मास्थाऽनादाण् हृदयति-
सर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठप्रनयच्छपश्यच्छर्धौशीयसीदाः” इति
सूत्रेण पिबादेशे ‘पिबध्यै’ इति भवति ।

समुद्रिया अप्सरसः—समुन्दतीति समुद्रः “स्फायितञ्चीति” रगागमे
निष्पन्नसमुद्रशब्दात् “समुद्राभ्राद्घः” इति सूत्रेण घप्रत्यये “आयनेयीनी-
यियः फढखल्लघां प्रत्ययादीनाम्” इति सूत्रेण घस्य इयादेशेऽकारस्य लोपे
विभक्तिकार्ये “समुद्रिया” इति भवति ।

तं प्रतनथा—प्रतनशब्दात् “प्रतनपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि” इति सू-
त्रेण थाल्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे अव्ययत्वे सुपो लुकि ‘प्रतनथा’ इति भवति ।

एष स्य भानुः—अत्र “स्यश्छन्दसि बहुलम्” इति सूत्रेण स्योत्तरस्य
इत्यस्य लोपे एषस्य भानुः इति भवति ।

रारन्धि—रम्धातोर्लटि रमेर्व्यत्ययेन परस्मैपदे शिपि तस्य द्वौ “गङ्गि-
तश्च” इति सूत्रेण हेर्धि आदेशे शपि शपः श्लौ अभ्यासत्वे ह्लादिःशेषेऽभ्या-
सदीर्घे “रारन्धि” अत्र “अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिक-
लोपो झलि छिनि” इति सूत्रेण मलोपस्तु न हेरङित्वात् ।

दक्षिणतः शये—अत्र प्रयोगांशे शेते इत्यत्र “लोपस्त आत्मनेपदेषु”
इति सूत्रेण तलोपेऽयादेशे ‘शये’ इति भवति ।

मोषुणः—अत्र प्रयोगे अस्मदादेशस्य नसित्यस्थनकारस्य “नश्च धातु-
स्थोरुषुभ्यः” इति सूत्रेण णकारे सकारस्य रुत्वे विषर्गे मो षु णः इति सिद्धम् ।

२—प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे—२० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा । ईषान्तस्य हलादेरादिरुदात्तो वा स्यात् । इत्यर्थः । हलीषा । लाङ्गलीषा । इत्युदाहरणम् ।

किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम्—क्रियाप्रश्ने वर्तमानेन किञ्चिद्देन युक्तं तिङन्तं नाऽनुदात्तं स्यात् । इत्यर्थः । किं द्विजः पचत्याहोस्विद्गच्छति । इत्युदाहरणम् ।

३—हिसन्ति—३० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

मह्यम्—अत्र प्रयोगे “ङयि च” इति सूत्रेणादुदात्ते “मह्यम्” इति ।

कल्याणः—अत्र प्रयोगे “लघावन्ते द्वयोश्च बह्वो गुरुः” इति सूत्रेण पर्यायेणाऽऽदिमध्यानुदात्तौ ततश्च ‘कल्याणः’ ‘कल्याणः’ इति भवति ।

आग्नेयः—३१ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

त्रिभिष्टुम्—३० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

भ्राष्ट्रपक्वः—भ्रून्तन्त्राष्ट्रशब्दः नित्यत्वादायुदात्तः ततश्च समासे “समासस्य” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते तत्प्रवाच्य “सप्तमी सिद्धशुक्लपक्ववन्धेऽत्रकालात्” इति सूत्रेण प्रकृतिभावे “भाष्ट्रपक्वः” इति भवति ।

आर्यब्राह्मणः—आर्यशब्दस्य ण्यदन्तत्वात् “तिरस्वरितम्” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते आर्यश्चासौ ब्राह्मणः इति कर्मधारयसमासे “समासस्य” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते ब्राह्मणकुमारयोस्तत्परपदयोर्ण्यः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं वा स्यात् कर्मधारये इत्यर्थक—“आर्योब्राह्मणकुमारयोः” इति सूत्रेण प्रकृतिस्वरे “आर्यब्राह्मणः” पक्षे आर्यब्राह्मणः इति भवति ।

उष्ट्रक्रोशी—अत्र प्रयोगे “उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव” इति सूत्रेण क्रोशीति णिन्यन्ते उत्तरपदे परे उपमानवाचिनः पूर्वपदस्योष्ट्र इत्यस्याऽऽयुदात्ते ‘उष्ट्रक्रोशी’ इति भवति ।

उपकूलम्—उपकूलमित्यत्राव्ययीभावसमासानन्तरं “कूलतीरतूलमूलशालाऽक्षसममव्ययीभावे” इति सूत्रेणोत्तरपदस्याऽन्तोदात्तत्वे “उपकूलम्” इति भवति ।

प्रत्यंशुः—प्रतिगतः अंशुरिति ‘प्रत्यंशुः’ अत्र प्रयोगे “प्रतेरंश्वादयस्त-

त्पुरुषे” इति सूत्रेण अंशु इत्यस्याऽन्तोदात्तत्वे ‘प्रत्यंशुः’ इति भवति ।

४—द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ—अत्र “मूर्धन्” इत्यकृतसमासान्तः एव मूर्धशब्दः । किमर्थमेतादृशमिति, तस्यैतत्प्रयोजनमसत्यपि समासान्तेऽन्तोदात्तत्वं यथा स्यात् । एतदेवज्ञापकमनित्यः समासान्तो भवतीति पथकृतसमासान्तस्योपादानम्, तर्हि यदा समासान्तः क्रियते तदा न प्राप्नोति, कुतः ? शब्दान्तरत्वात् । बहुव्रीहिकार्यत्वात्, तस्य बहुव्रीहिरेकादेशः समासान्तस्तस्य भावस्तस्मात् । तदेवं बहुव्रीहिकार्यत्वात्तदेकदेशित्वेनाऽऽश्रयणात् समासान्तस्येति यदा समासान्तः क्रियते तदापि विधिरयं भवत्येवेति शम् ।

फिट्सूत्राणां पाणिनीयैरुपादेयत्वमिति—ननु कथमपाणिनीयानि सूत्राण्युपन्यस्यन्ते, पाणिनीयसूत्रैर्यः स्वरः आयाति स एव प्रमाणम् । तथा च “शताच्च ठन्यतावशते” इति सूत्रे कैयटः नियतकालाच्च स्मृतयो व्यवस्था-हेतवः इति मुनित्रयमतेनाऽद्यत्वे साध्वसाधुप्रविभागः, इति नैतत् “अपाणिनीयान्यपि फिट्सूत्राणि पाणिनीयैराश्रियन्ते” भाष्याज्ज्ञापकात् ।

तथा च “आद्युदात्तश्च” इति सूत्रे भाष्यं प्रातिपदिकस्य चान्त इति प्रकृतेरन्तोदात्तत्वं शास्तीति । तथा तस्मिन्नेव सूत्रे ‘प्रत्ययाद्युदात्तत्वस्याऽवकाशः, यत्राऽनुदात्ता प्रकृतिः ‘समत्वम् सिमत्वमिति । नहि ‘फिषेऽन्त उदात्तः’ “त्वत्व-खमसिमे”त्यादि फिट्सूत्राश्रयणं विना प्रकृतेरन्तोदात्तत्वं सर्वाऽनुदात्तत्वञ्च सम्भवतीति दिक् ।

५—“कुं खुं गुं धुं” एते चत्वारो यमाः । ननु वर्गेषु आदितश्चतुर्णां पञ्चमे परे तन्मध्ये पूर्ववर्णसमानाकारं वर्णान्तरं यमसङ्गममिति प्रातिशख्याद् वर्गपञ्चमयुक्ताः । प्रथमादयो यमा इति विवरणात् ।

“अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यन्तश्च परतो यदि ।

तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत् सन्नयः पूर्ववर्णयोः”

इति नारदीयशिक्षावचनात् अनन्त्यान्तसंयोगे मध्ये यमः पूर्वस्य गुण इति ऋकृत्तन्त्रव्याकरणप्रणेतृवचनाच्च यमानां विंशतित्वमायातं ततश्चत्वार इत्यसङ्गतम् । न च “कुं खुं गुं धुं यमाः” इति न्यासगन्धेन तेषां चतुष्टयत्वं शङ्क्यम् । “कचट-तपाः कुः खछठथफाः खुः इत्यादि परिभाषया तावताऽपि तेषां विंशतित्वलाभादिति चेन्न । प्रथमयमद्वितीययमादिभेदेन तेषां विभाजने संख्याचतुष्टयत्वलाभात् ।

६—अचोऽस्पृष्टा यणास्त्वोबन्नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः ।

शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधाऽनुप्रदानतः ॥

अचोऽस्पृष्टेति—अचः रवराः, अस्पृष्टाः स्पर्शाऽभावरूपविधृतप्रयत्नवन्त इत्यर्थः । यण इति । ईषत्पदार्थस्य स्पृष्टास्पृष्टयोरन्वयात् । यरलवानामीषत्स्पृष्टत्वमीषद्विधृतत्वञ्चेति नागेशः । वस्तुतस्तु ईषदित्यत्रास्पृष्टेत्यस्यैकदेशस्पृष्टपदानुवृत्त्या यणामीषत्स्पृष्टत्वमेव । अत एव “ईषत् स्पृष्टास्तथान्तःस्थाः” इति याज्ञवल्क्यशिक्षा, “अन्तःस्था ईषदुत्स्पृष्टा” इत्यमरेश शिक्षा च सङ्गच्छेते । नेमस्पृष्टा इति । नेम इत्यर्द्धे, शलः शषसदाः अर्द्धस्पृष्टा इत्यर्थः । शेषाः हलः कादयोमावसानाः स्पृष्टाः स्पृष्टप्रयत्नवन्तः । तथा च षड्विधमास्यप्रयत्नमुपक्रम्य याज्ञवल्क्यः—

“अकारः संवृतो ज्ञेय इतरे विवृताः स्वराः ।

सर्वे च ते स्युरस्पृष्टाः स्पर्शाः स्पृष्टा भवन्ति हि ॥

ईषत्स्पृष्टास्तथान्तःस्था ऊष्माणोऽर्द्धस्पृष्टाः स्वराः ।

सामान्यं भजते वर्णः सस्थानकरणस्य हि” ॥

अत्राकारस्य संवृतत्वं ।

“संवृतं मातृकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमातृकम्” इत्यत्रोक्तम् । स्वरतः कालतः इत्यत्रोद्दिष्टं पञ्चमं भेदं दर्शयितुमाह—निबोधेति ! अनुप्रदानतः इत्यत्र पञ्चम्यन्तात्तसिः । अनुप्रदानं बाह्यप्रयत्नस्तस्माद्दर्शनां भेदं निबोध जानी-हीत्यर्थः । [शलः स्मृताः इत्यत्र ‘शरस्तथा’ इति क्वचित् पाठो दृश्यते]

१४३६

सूचना—सूत्रनिर्देशप्रसङ्गे समस्तसूत्रोत्प्लेखनमावश्यकम् ।

१—नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । आ प्रा द्यावा पृथिवी । दधिकाः । मरुते पतिः । प्रभ्वी । वेशोभगीनः । सुमङ्गलीः । पूषा अविष्टु । नूमर्तः । गत्वाय । प्रमिणन्ति व्रतानि । एषां मध्ये सप्तसु प्रयोगेषु वैदिकप्रक्रियाकार्याणि शास्त्रनिदशपु-रस्सरं प्रदर्शनीयानि ।

१४

२—अनसन्तानपुंसकाच्छन्दसि । स्वाङ्गशिष्टामदन्तानाम् । गोत्रान्ते वासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे । स्वरितो वाऽनुदाते पदादौ ।

४ स्व० प्र०

एषामर्थाः उदाहरणानि च लेख्यानि ।

३—देवीम् । शरावती । पल्लम् । नेत्री । पाणिनीयसौदीयाः । ब्रह्म-
नगरम् । प्रधौतपादः । पर्यन्तः ।

एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषा प्रतिपादनी-
याः, स्वरचिह्नानि च प्रदर्शनीयानि ।

४—(क) “अग्निमीले पुरोहितम्” इत्यस्मिन् पादे स्वरचिह्नैः सह
स्वरसञ्चारप्रकारः प्रदर्शनीयः ।

(ख) “गतिकारकोपपदात् कृत्” अत्र कृद्ग्रहणप्रयोजनं सुरूपं
प्रतिपादनीयम् ।

५—मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥
सुरूपं व्याख्यायतां स्वशब्दैः ।

६—“अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः” । सविशदमेतद्
व्याख्याय अयोगवाहाः के ? कथञ्च तेषामयोगवाहत्वमिति निरु-
पणीयम् ।

प्रश्नोत्तराणि—

१—नैनं हिच्यन्त्यपि वाजिनेषु—१४ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

आ प्रा द्यावा पृथिवी—आह पूर्वकप्राधातोरुक्तिं सिपिचलौ “मन्त्रे घसह्वर-
णशवृदहाद्बृचूगमिजनिभ्यो लेः” इति सूत्रेण चलेरुक्तिं “इतश्च”
इतीकारस्य लोपे सत्वे यत्वे यलोपे ‘आ प्रा द्यावापृथिवी’ इति सिद्धम् ।

दधिकाः—दधि क्रामति दधिकाः इत्यत्र “जनसनखनक्रमगमोचिट्”
इति विटि सर्वापहारे “विड्वनोरनुनासिकस्यात्” इति सूत्रेणादादेशे सौ
रत्वे विसर्गे ‘दधिकाः’ इति भवति ।

मरते पतिः—अत्र सृङ् धातोरुक्तिं ते “तुदादिभ्यः शः” इति प्राप्ते
“व्यत्ययो बहुलम्” इति व्यत्ययेन अपि अनुबन्धलोपे गुणे रपरे “टित
आत्मनेपदानां टेरे” इत्येत्वे ‘मरते’ इति सिद्धम् । लोके तु शप्रत्यये सति
“रिङ्शयग्लिङ्क्षु” इति रिङादेशे इयङि ‘म्रियते’ इति ।

प्रभवी—प्रभुशब्दात् “भुवश्च” इति सूत्रेण ङीषि अनुबन्धलोपे यणादेशे सौ

सुलोपे 'प्रभवी' इति सिद्धम् ।

वेशोभगीनः—वेशो बलं तदेव भगः इति वेशोभग्यः, वेशोभगीनः इति इत्यत्र "वेशोयशाभादेर्भगाद्यल्खौ" इति सूत्रेण खप्रत्यये 'आयनेयीनियियः फढखल्लुघां प्रत्ययादोनाम्" इति सूत्रेण खस्य ईनादेशोऽकारस्य लोपे सौ रुत्वे विसर्गे 'वेशोभगीनः' इति सिद्धम् । यत् प्रत्यये सति अकारस्य लोपे 'वेशो-भग्यः' इति भवति ।

सुमङ्गलीः—४२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

पूषा अविष्टु । अत्र प्रयोगे दीर्घे प्राप्ते "ईषा यक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभावे चक्तव्यः" इत्यनेन प्रकृतिभावे 'पूषा अविष्टु' इति भवति ।

नू मर्तः—६ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

गत्वाय—११ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

प्रमिणन्ति व्रतानि—मीनातेर्लटि क्षिप्रत्यये परे "हिनुमीना" इति णत्वे 'मीनातेनिगमे' इति सूत्रेण ह्रस्वे "प्रमिणन्ति" इति सिद्धम् । लोके तु 'प्रमीणन्ति' इति भवति ।

२—अनसन्तानपुंसकाच्छन्दसि—तत्पुरुषाद्वच् स्यात् समासान्तः इत्यर्थः । 'ब्रह्मसामं भवति" 'देवच्छन्दसानि' इत्युदाहरणम् ।

स्वाङ्गशिष्टामदन्तानाम्—४२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेत्रे—गोत्रवाचिनि, अन्तेवाचिनि चोत्तर-पदे माणवब्राह्मणयोश्च क्षेत्रवाचिनि समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात् इत्यर्थः । भार्यासौश्रुतः । कुमारीदाक्षाः । ओदनपाणिनीयाः । भिक्षामाणवः । भय-ब्राह्मणः । इत्युदाहरणानि ।

स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ—३३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

३—देवीम्—३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् । शरावती—२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

पल्लम्—अत्र प्रयोगे "हयादीनामसंयुक्तास्तानामन्तः" इति सूत्रे-णाऽद्युदात्ते "पल्लम्" इति अनेनैव अन्त्यात्पूर्वस्योदात्तत्वे 'पल्लम्' इति भवति ।

नेत्री—तृजन्तत्वात् "चितः" इति सूत्रेणान्तोदात्ते "उदात्तयणो हल्पूर्-वात्" इति सूत्रेणोदात्तत्वे 'नेत्री' इति भवति ।

पाणिनीयरौढीयाः—पाणिनेः रौढेश्च छात्रा इति पाणिनीयाः रौढीयाः । पा-

णिनीयाश्च रौढीयाश्च इति पाणिनीयरौढीयाः अत्र पाणिनिरौढिशब्दाभ्यां “वृद्धा-
च्छुः” इति सूत्रेण छप्रत्यये “आयनेयीनीयियः फढल्लुघां प्रत्ययादी-
नाम्” इति सूत्रेण छस्येयादेशे इकारस्य लोपे छस्वरेण मध्योदात्तयोः पाणिनीयाश्च
रौढीयाश्चेति द्वन्द्वसमासे “समासस्य” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते “आचा-
र्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिभावे ‘पाणिनीयरौढी-
याः’ इति भवति । अत्र रौढिशब्दात् “ऋजश्च” इत्यण “न छ ऋ ऋः प्राच्यभर-
तेषु” इति तन्निषेधात् ।

ब्रह्मनगरम्—अत्र प्रयोगे “ब्रमहन्नवं नगरेऽनुदीक्षाम्” इति सूत्रेण
नगरे परे पूर्वस्याऽऽद्युदात्ते ‘ब्रह्मनगरम्’ इति भवति ।

प्रधौतपादः— गतिशुद्ध्यर्थक-उच्चारितसंज्ञकप्रपूर्वकधाव्-धातोः निष्ठाक्तप्रत्य-
येऽनुबन्धलोपे “छ्वोः शूडनुनासिके च” इति सूत्रेणोठि “पत्येधत्थूड्सु”
इति सूत्रेण छ्वौ प्रधौतशब्दस्य गतिस्वरेणाऽऽद्युदात्ते प्रधौतपाद इत्यत्र “निष्ठो-
पसर्गपूर्वमन्यतरस्याम्” इति सूत्रेण निष्ठान्तपूर्वपदस्याऽन्तोदात्तत्वे “प्रधौत-
पादः” इति अन्तोदात्ताऽभावपक्षे “प्रधौतपादः” इति भवति ।

पर्यन्तः—अत्र प्रयोगे “अन्तः” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते ‘पर्यन्तः’ इति भवति ।

४—(क) अग्निमीले पुरोहितम्—तत्र च माधवमन्ते ‘फिषेन्त उदा-
त्तः’ इति सूत्रेणाव्युत्पत्तिपक्षेऽन्तोदात्तः । वस्तुतस्तु ‘घृतादीनाञ्च’ इति सूत्रेण
घृतादित्वाद्न्तोदात्तः । व्युत्पत्तिपक्षे तु “ज्जित्यादिर्नित्यम्” इति निप्रत्ययस्व-
रेणाऽऽद्युदात्तः । अम् सुप्त्वात् “सुप्पितौ अनुदात्तौ” इति सूत्रेणाऽनुदात्तः
“अमि पूर्वः” इत्येकादेशात् “एकादेश उदात्तेनोदात्तः” इति सूत्रेणोदात्तः ।
अग्निशब्दात् परे तिङ्न्तस्य ईळे शब्दस्य “तिङ्ङतिङः” इत्यनेन निघातः ।
‘ईङ्’स्तुतौ धातोः लङुक्तमैकवचनस्य, इ + ट इट्—टेरेत्वम् द्वयोश्चास्य स्वरयोः
इत्यादिना प्रातिशाख्येन ङस्य लत्वम् । सत्यपि धातुत्वाद्युदात्तत्वे संहितावि-
क्षायां निघाते संहितायान्तु “उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः” इत्यनेनेकारः स्व-
रितः । “स्वरिताःसंहितायाम्” इति ‘ले’ इत्यस्य प्रचयाऽपरपर्याया एकश्रुतिः ।

पुरः शब्दोऽन्तोदात्तः “पूर्वाधराधराणाम्” इत्यसि प्रत्ययस्वरात् । हित
शब्दोपि धातो निघाता “दधातेहिः” इति सूत्रेण ह्यादेशे प्रत्ययस्वरेणाऽन्तो-

दातः । “पुरोऽव्ययम्” इति गतिसंज्ञायां “कुगति च” इति समासे समासो-
ऽन्तोदात्ते “तत्पुरुषे तुल्यार्थ” इत्यव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरे, याथादिस्वरे च पूर्व-
पूर्वोपमर्देन प्राप्ते “गतिरनन्तरः” इति पूर्वपदप्रकृतिस्वः । पुरःशब्दस्योकारस्य
संहितायां प्रचये प्राप्ते “उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः” इत्यनुदात्ततः इति शम् ।

४—(ख) गतिकारकोपपदात्कृत्—अत्र कृद्प्रश्नप्रयोजनम् ३५ पृष्ठे
द्रष्टव्यम् ।

५—मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स्वागवज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

व्याख्या—मन्त्रप्रश्नं साधुशब्दमात्रोपलक्षणम्, अत एव ‘दुष्टः शब्दः’ इति
शाब्दोक्तं पाठान्तरं सङ्गच्छते । इन्द्रेण ज्येष्ठगुणे हते कुपितस्त्वष्टा इन्द्रविघातपुत्रज-
ननेच्छया यज्ञमारब्धवान्, तत्र चेन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्वेति मन्त्र ऊहित इन्द्रस्य शमयिता
ज्ञातयिता वेति इन्द्रशत्रुशब्दार्थो विवक्षितस्तत्र तत्पुरुषप्रयुक्ताऽन्तोदात्तत्वे कर्तव्ये
बहुव्रीहिमाश्रित्य ऋत्विग्भिः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो विहितस्तत्र इन्द्र एव वृत्रस्य शम-
यिता जात इति प्रसिद्धिः । स्वरतो वर्णत इत्यत्र “हीयमानपापयोगाच्च” इति
तृतीयान्तात्तसिः । स्वरवर्णाभ्यां रहितो मन्त्रो मिथ्याप्रयुक्तो विवक्षितार्थासाधकत्वा-
त्स विवक्षितमर्थं न कथयति । वागेव वज्रः इति वागवज्रो हिंसकत्वात् यजमानं
हिनस्ति नाशयति । फलाऽनिष्टरतिनिष्टाऽवाप्तिश्चात्र नाशः । तत्र दृष्टान्तमाह—
यथेति । स्वरतः इत्यत्र षष्ठ्यन्तादाद्यादित्वात्तसिः । तथाच नारदः—

“प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः प्रयुज्यते ।

यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजां पशून्” ॥ इति ।

ननु ऋत्विगपराधे सति यजमानेऽनिष्टपातः कथमिति चेत्प्रत्यम् । तदनुष्ठा-
पितयागजन्यस्वर्गादिफलभागित्वं यजमानस्येवेति तद्विहितापराधस्यापि तन्नाभि-
त्वात् । ऋत्विजां दक्षिणामात्रभागित्वादिति शम् ।

६—अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः—

अयोगवाहाः विसर्गादयः यद्वर्णाश्रितास्तेषां यस्स्थानं तदयोगवाहानामपि
संबोध्यम् नस्तेषां स्वतन्त्रं स्थानम् । वाहयन्ति निर्वाहयन्ति कार्यमिति वाहाः अ-
विद्यमानो योगो वर्णसमाम्नायेषु पाठो येषां तेऽयोगास्ते च ते वाहाः इत्ययोगवाहाः
विसर्गादयः आश्रयस्थानभागिनः इति ।

अयोगवाह्यश्च अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीयाः । अत्रत्य विषयाः पूर्वमपि निरूपिताः ।

१६३७

सूचना—सूत्रनिर्देशप्रसङ्गे समस्तसूत्रोत्प्लेखनमावश्यकम् ।

१—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः । शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवय-
ज्यायै । अद्य ममार । दातवा उ । सप्तदशान्तरश्छान्दस्यः । दा-
धार यः पृथिवीम् । अयं सो अध्वरः । सुश्चन्द्र दस्म । नाभा पृ-
थिव्याः । गृष्टिः ससूत्र स्थविरम् । त्रिभिष्टुं देव सवितः ।
एषां मध्ये सप्तसु प्रयोगेषु वैदिकप्रक्रियाकार्याणि शास्त्रानिर्देश-
पूर्वकं प्रदर्शनीयानि । १४

२—मतुवसौ रु सम्बुद्धौ छन्दसि । नवविषयस्याऽनिसन्तस्य । आ-
चार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि । उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनु-
दात्तस्य ।

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि । १०

३—चिकीर्षकः । केकयः । दातवै । अक्षण्वन्तः । मद्रसवेशम् । पुरा-
हितम् । उद्दालकपुष्पभक्षिका । विश्वकर्मा ।
एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपादना-
याः, स्वरचिह्नानि च प्रदर्शनीयानि । १०

४—(क) “शृणोत ग्रावाणः” इत्यत्र “ऋचि तुनुघ” इत्यनेन दीर्घत्व-
धारणप्रकारः प्रदर्शनीयः । ३.

४—(ख) “पूजनात्पूजितमनुदात्तम् काष्ठादिभ्यः” अत्र पूजितप्र-
हण प्रयोजनं प्रतिपादनीयम् । ३

५—त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः सम्भवतो मताः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ।
सुस्पष्टमेतद् व्याख्याय वर्णानां त्रिषष्टित्वं चतुःषष्टित्वं च कथ-
मिति सप्रपञ्चं निरूपणीयम् । ५

६—ऊष्मणोऽष्टविधा गतयः सोदाहरणं निरूपणीयाः । ५

प्रश्नोत्तराणि—

१—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः—अत्र “दिवस्नदर्थस्य” इति सूत्रेण प्राप्तषष्ठीम्बाधित्वा “द्वितीया ब्राह्मणे” इति द्वितीया विभक्तौ ‘गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः’ इति भवति ।

शुन्धध्वं देव्याय कर्मणे देवयज्यायै—देवशब्दे उपपदे यज्धातोः “छन्दसि निष्टक्यदेवद्वयप्रणीयोन्नीयोच्छ्रियमर्यस्तयार्ध्वर्यखन्यखान्य देवयज्यापूच्छयप्रतिषाव्यब्रह्मवाद्यभीव्यस्ताव्योचाद्यपृडानि” इति सूत्रे देवयज्येति निपातनात् यप्रत्यये टापि सौ सुलोपे ‘देवयज्या’ इति सिद्धम् । स्त्रीलिङ्गे एवेदं निपातनमिति बोध्यम् ।

अद्य ममार—३७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

दातवा उ—३३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः—इत्यत्र “अक्षर समूहे छन्दस उपसङ्ख्यानम्” इति छन्दःशब्दात् यत् प्रत्यये सौ रुत्वे विभर्गे “सप्तदशाक्षरश्छन्दस्य” इति भवति ।

दाधार यः पृथिवीम्—अत्र धृधातोर्लिटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासकार्ये वृद्धौ रपरे ‘दधार’ इति जाते “तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य” इति सूत्रेणाऽभ्यासदीर्घे ‘दाधार’ इति भवति ।

अयं सो अक्षरः—अत्र पूर्वरूपे प्राप्ते “अनुदात्ते च कुधपरे” इति सूत्रेण प्रकृतिभावे “अयं सो अक्षरः” इति भवति ।

सुश्चन्द्र दस्म—सु × चन्द्र इति स्थिते “ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे” इति सूत्रेण ह्रस्वात्परस्य चन्द्रशब्दस्योत्तरपदस्य सुडागमे उटावितौ “स्तोः श्चुना श्चुः” इति श्चुत्वे ‘सुश्चन्द्र दस्म’ इति भवति ।

नाभा पृथिव्याः—नाभि शब्दात् विविभक्तौ “सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडाडयायाजाला” इति सूत्रेण विस्थाने डाऽऽदेशेऽनुबन्धलोपे द्वित्वाट्टिलोपे “नाभा” इति सिद्धम् । लोके ‘सुपां सुलुक्’ इति सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावात् नाभौ इति भवति ।

गृष्टिः ससूव स्थविरम्—सूतेर्लिटि “ससूवेति निगमे” इति सूत्रे ‘ससूव’ इति पाठात् निपातनात् पररमैपदे तिपि तस्य णलादेशेऽनुबन्धलोपे द्वित्वे

अभ्यासत्वे निपातनादेव युगागमेऽभ्यासस्याऽत्वे 'ससूच' इति भवति । लोके तु 'सुषुवे' इति भवति ।

त्रिभिष्टुं देव सवितः—एतत्वाक्यघटकत्रिभिष्टुमित्यत्र त्रिभिः त्रम् इति आसीत् तत्र सत्वे "युष्मत्तत्ततश्चुष्मन्तः पादम्" इति सूत्रेण सस्य षत्वे "ष्टुना ष्टुः" इति सूत्रेण ष्टुत्वे 'त्रिभिष्टुं देवसवितः' इति भवति ।

२—मनुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि-मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च रुः स्यात् इत्यर्थः । इन्द्रं मरुत्वं इह पाहि सोमम् । हरिवो मेदिनं त्वा । इत्युदाहरणे ।

नञिप्रत्यस्याऽनिसन्तस्य—३४ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य—३० पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि—३९ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

चिकीर्षकः—३४ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

केकयः—अत्र "जनपदशब्दानामेषान्तानाम्" इत्यनेनाऽऽद्युदात्ते 'के-कयः' इति भवति ।

दातवै—दाधातोः "कृत्यार्थं तवैकेनकेन्यत्वनः" इति सूत्रेण तवैप्रत्यये अन्तश्च तवै युगपत्" इति सूत्रेण तवैप्रत्ययान्तस्याद्यन्तयोर्युगपदाद्युदात्तयोः कृतयोः 'दातवै' इति सिद्धम् । दातवै इत्यस्य दातव्यमित्यर्थः ।

अक्षएवन्तः—अक्षिशब्दान्मतुपि 'मस्थिदधिसकथ्यदणामनङ्गुदात्तः' इति "छन्दस्यपि दृश्यते" इत्यनङ्गि ङकारस्येत्सञ्ज्ञायां लोपे च "अनो नुट्" इत्यस्याऽसिद्धत्वात्पूर्वं नलोपे ततो भूतपूर्वगत्या मतुपो नुटि उदावितौ "मादुप-धायाश्चामतोर्वाऽयवादिभ्यः" इति मकारस्य वत्वे णत्वे "ह्रस्वनुङ्भ्यां मतुप्" इति सूत्रेण नुटः परस्य मतुपः उदात्ते 'अङ्गणवन्त' इति भवति ।

मद्रसवेशम्—मद्रस्य सवेशमिति षष्ठीसमासे "समासस्य" इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रबाध्य सामीप्यार्थेषु सविधादिषूत्तरपदेषु पूर्वपदं प्रकृत्यास्यात्तत्पुरुषे इत्यर्थक "सविध्रसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये" इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे 'मद्रसवेशम्' इति भवति ।

पुरोहितम्—अत्र पुरः शब्दः 'पूर्वाधरावराणामसिपुर्धवश्चैवाम्' इत्यसिप्रत्ययान्तत्वात् प्रत्ययस्वेरणाऽन्तोदात्तः द्वितशब्दोऽपि धावो निष्ठायां 'द-धातेर्हिः' इति ह्यादेशे प्रत्ययस्वेरणाऽन्तोदात्तः । यद्यपि "पुरोऽव्ययम्" इति

गतिसञ्ज्ञायां “कुगति च” इति समासे समासान्तोदात्तः “तत्पुरुषे तुल्यार्थे” इत्यव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरे प्राप्ते “गतिकारकोपपदात्कृत्” कृदुत्तरपद-
प्रकृतिस्वरे, थाथादिस्वरे च पूर्वपूर्वोपमर्देन प्राप्ते तथापि “गतिरनन्तरः”
इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरो भवति ।

उद्दालकपुष्पभञ्जिका—अत्र “नित्यं क्रीडे”ति समासे “समासस्य”
इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते तम्प्रवाध्य प्राग्देशवाचिनां या क्रीडा तद्वाचिनि समासे
अकप्रत्ययान्ते परे पूर्वमाद्युदात्तं स्यादित्यर्थक “प्राचां क्रीडायाम्” इति सूत्रेणा-
द्युदात्ते ‘उद्दालकपुष्पभञ्जिका’ इति भवति ।

विश्वकर्मा—विशेः किन् नित्वादाद्युदात्ते ततश्च बहुव्रीहिसमासे सञ्ज्ञात्वात्
“बहुव्रीहौ विश्वं सञ्ज्ञायाम्” इति सूत्रेण पूर्वपदभूतस्य विश्वशब्दस्या-
ऽन्तोदात्तत्वे ‘विश्वकर्मा’ इति ।

४—(क) “ऋचि तुनुघमक्षुनकङ्कत्रोरुष्याणाम्”—अत्र सूत्रे तद्धिति था-
देशस्य ङित्वपक्षे ग्रहणम् तेन “ऋणोत प्रावाणः” अत्र न दीर्घः। अत्र (ऋणोत
इत्यत्र) “तप्तनसनथनाश्च” इति तत्वादेशेन पित्वात् ङित्वं नास्ति ।

४—(ख) पूजनात्पूजितप्रनुदात्तम् काष्ठादिभ्यः—पूजनस्य पूजिताऽ
पेक्षत्वात् पूजनादित्येव पूजितग्रहणे सिद्धे पूजितग्रहणमनन्तरपूजितलाभार्थम् ।
एतदेव च ज्ञापकमत्र प्रकरणे पञ्चमीनिर्देशेऽपि नानन्तर्यमाश्रीयते इति ज्ञापकफलञ्च
“यद्बृत्तान्नित्यम्” इत्यस्योदाहरणे “यद्व्यङ्वायुर्वाति” इत्यत्र व्यवहिते
“यद्बृत्तान्नित्यम्” इति सूत्रकृतकार्यम् भवति ।

५—त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः सम्भवतो मताः ।

प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥ इति ।

अधिका षष्टिस्त्रिषष्टिरेवं चतुःषष्टिर्वा वर्णा अक्षराणि सम्भवतो लोकेदयो-
रेतेषामेव सम्भवात् प्रसिद्धत्वान्मता इष्टा इतोऽधिका वर्णा नेष्टा इत्यर्थः । ननु सं-
स्कृतप्राकृतादिभेदाद् भाषाणां बाहुरूपान्तेष्वधिकवर्णोपलब्धिसम्भवात् कुत एवेत्यत
आह—प्राकृत इति । प्राकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतम् । तदुक्तं हरिणा
चाक्यपदीये ब्रह्मकाण्डे—

“पारम्पर्यादपभ्रंशा विगुणेष्वभिघातृषु ।

प्रसिद्धिमागता येषु तेषां साधुरवाचकः” ॥

सर्वजनप्रसिद्धत्वात्प्राकृतस्य प्रथमोच्चारणमपि नाऽपभ्रंशादेः सङ्ग्रहः । तथाच शूरसेन्यादिप्राकृतसंस्कृतापभ्रंशादिषु सर्वत्रैत एव वर्णा उच्चार्यन्ते नाधिका इत्यर्थः । ननु नाधिका इति कुतो ज्ञातं त्वद्वचसि प्रमाणाऽभाव इति चेत्तत्राह—स्वयमिति । स्वयम्भुवा ब्राह्मणा स्वयमात्मनैव निर्दिष्टसङ्ख्याका एव वर्णाः प्रकट्टेणात्यादरेणोक्ताः कथिता अतो निरुक्तसङ्ख्यातो नाधिकास्ते इति भावः ।

एकविंशतिः स्वराः तथाहि—अ इ उ ऋ इत्येते ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाद् द्वादश लृशरो ह्रस्व इत्येक एव एवं त्रयोदश जाताः ए ओ ऐ औ इत्येते दीर्घप्लुतभेदाद् द्वा, एवं सङ्कलनया एकविंशतिः स्वराः 'कादयो मावसाना स्पर्शा' इत्येवं सङ्केतितानां स्पर्शानां पञ्चविंशतिः सङ्ख्या प्रसिद्धैव । यादयो यकारमारभ्य इकारपर्यन्ता अन्तःस्थोष्माण अष्टौ "कुं खुं गुं घुं" इति यमाश्चत्वार इत्येवं सङ्कलनया अष्टपञ्चाशत्सङ्ख्या सम्पन्ना । अनुस्वारः, विसर्गः, जिह्वामूलीयः, उपध्मानीयः, द्विः स्पृष्ट इति बहु ऋचानामेष प्रसिद्धः श्लेषो लेहेति एवं सङ्कलनया वर्णानां त्रिषष्टिः लृकारस्य प्लुतसम्भवात् तेन सह चतुःषष्टिर्वर्णाः इत्यवधेयम् ।

६—ऊष्मणः—शषसहानां गतिः स्थितिरष्टधा सोदाहरणेति ओभाव इति यथा चन्द्रमोभ्यामित्यादौ सकारस्य कुत्रचिद्विद्युतिः—

द्वयोस्तु स्वरयोर्मध्ये सन्धिर्यत्र न दृश्यते ।

विवृतिस्तत्र विज्ञेया यऽईशेति निदर्शनम् ॥

इति याज्ञवल्क्योक्तलक्षणाः सोदाहरणाः । शषसा-विशौ, रत्नमुषौ, चन्द्रमसा-वित्यादयः । रेफः-सजूर्भ्याम्, इति । जिह्वामूलम्-प्रातःकरोति, भूयःकरोति इत्यादि । उपध्मा-प्रातःपचति, भूयःपचतीत्याद्युक्तम् । ऊष्मणां गत्यष्टककथनं यस्य यत्सम्भवति तदभिप्रायेण न तु प्रत्येकं तेषां गत्यष्टकत्वम् ।

१४३८

१—वृत्रं हनति वृत्रहा । अघायुः । पपिः सोमम् । याने अग्ने रक्षस्या तनुः । कथा दाशेम । अन्न आँ अपः । शृणुधी गिरः । अधः स्विदासीत् । तमसस् पारमस्य । पितृयाणम् । पृतनासु साहा । एषां मध्ये सप्तसु प्रयोगेषु वैदिकप्रक्रियाकार्याणि शास्त्रनिर्देशपूर्वकं प्रदर्शनीयानि ।

२—बहुलं छन्दस्यमाङ्गयोगेऽपि । छन्दस्यनेकमपि साकाङ्गम् । तवै

चान्तश्च युगपत् । स्वाङ्गशिष्टामदन्तानाम् ।

एषामर्था उदाहरणानि च लेख्यानि ।

३—शरावती । रुद्रहतः । आर्यब्राह्मणः । वृकोदरः । समपादः । दक्षिणः (बाहुः) भावसथः । उष्ट्रकोशी । १०

एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपादनीयाः स्वरचिह्नानि च प्रदर्शनीयानि । १०

४—गतिकारकोपपदात्कृत् इति सूत्रे कृद्ग्रहणप्रयोजनम् प्रतिपादनीयम् अथवा—निपातस्यचेत्यनेनैव त्वादीनां दीर्घत्वे ऋचितुनुघेत्यादिसूत्रे तेषां ग्रहणस्य वैयर्थ्यं निरस्यताम् । ६

५—अनुस्वारो विसर्गश्च (क)पौ चापि पराश्रितौ इत्यादि सुस्पष्टमेतद्व्याख्याय दुःस्पृष्टशब्दार्थो निरूप्यताम् । ५

६—अयोगवाह । यम । रङ्ग । नादिन् । श्वासिन् ।

इत्येतेषां शब्दानामर्थाः सोदाहरणं स्पष्टीकर्तव्याः । ५

सूचना—सूत्रनिर्देशप्रसङ्गे समस्तसूत्रोत्प्लेखनमावश्यकम् ।

प्रश्नोत्तराणि—

१—वृत्रं हनति वृत्रहा—३७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

अघायुः—४६ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

पपिः सोमम्—‘पा’ धातोः “आद्गमनहनजनः किकिनौ लिट् च” इति सूत्रेण किप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे लिङ्त्वदतिदेशेन द्वित्वादिकार्ये आलोपे सौ क्त्वे विसर्गे ‘पपिः’ इति भवति ।

या ते अग्ने रक्षस्यातनूः—हन्यतेऽनया हननी रक्षसा हननी रक्षस्येति विग्रहे “रक्षो यातूनां हननी” इति सूत्रेण रक्षस् शब्दात् यत्प्रत्यये विभक्तिकार्ये “रक्षस्या” इति भवति ।

कथा दाशेभ—३३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

अम्र औ अपः—४२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

शृणुधी गिरः—श्रुधातोः सिपि रौ “श्रुवः शृ च” इति सूत्रेण श्रुवः श्रुभावे विधानसामर्थ्यात् “उतश्च प्रत्ययादि”ति हेर्लुगभावे “श्रुशृणुपृक्-वृभ्यश्छन्दसि” इति सूत्रेण हेर्धि, आदेशे “अन्येषामपी”ति दीर्घे “शृणुधी” इति भवति ।

अथः स्विदासीत्—अत्र “विचार्यमाणानामि”ति विहितप्लुतस्य “उपरिस्विदासीदिति च” इति सूत्रेणऽनुदात्तत्वे “अथः स्विदासीत्” इति भवति ।

तमसस्पारमस्य—अत्र षष्ठीसमाप्ते “तत्पुरुषेकृतीत्य”लुकि सत्वे विसर्गे “पृष्ठयाः पतिपुत्रपृष्ठपरपदपयस्पोषेबु” इति सूत्रेण षष्ठी विसर्गस्य सादेशे “तमसस्पारमस्य” इति सिद्धम् ।

पितृयाणम्—अत्र “छन्दस्यृदवग्रहात्” इति सूत्रेण णत्वे “पितृयाणम्” इति भवति ।

मरुद्भिरग्रः पृतनासु साह्ला—अत्र सहेः तृचि अनङादिकार्ये सहता इति जाते ढस्त्वजश्त्वादिकार्ये दोर्ध्वे प्रातिशाख्यभाष्येणाऽचोमध्यस्थस्य ढस्य लृत्वे ढस्य ह्रस्व विहिते “साह्ला” इति (अत्रत्य प्रश्नोत्तरेऽचोर्मध्यस्थस्येत्यादि प्रातिशाख्यकौमुदीमूलमेव पर्याप्तम्) ।

२—बहुलं छन्दस्यमाङ्गयोगेपि—माङ्गयोगेऽयमाङ्गयोगेऽपि बहुलमङ्गटौ भवतः अमाङ्गयोगेऽपि न भवतः माङ्गयोगेऽपि च भवतः इत्यर्थः ।

उदाहरणवान्न—जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय । मा वः क्षेत्रे परवो-जन्यवाप्सुः ।

छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्—हीत्यनेन युक्तं साकाङ्क्षमनेकमपि नाऽनुदात्तम् अन्तर्हि मत्तो वदति स्यादित्यर्थः । पाप्मा चैनं युनाति । इत्युदाहरणम् ।

तवै चान्तश्च युगपत्—तवैप्रत्ययान्तस्याऽन्त उदात्तो गतिश्चाऽनन्तरः प्रकृत्या युगपच्चैतदुभयं स्यादित्यर्थः । अन्ये तवा उ । इत्युदाहरणम् ।

स्वाङ्गशिष्टामदन्तानाम्—४२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

३—शरावती—२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

रुद्रहतः—रुद्रेण हतः रुद्रहत इति विग्रहे समासे “समासस्य” इति सूत्रेण अन्तोदात्ते प्राप्ते “तृतीया कर्मणि” इति प्रकृतिभावे रुद्रशब्दस्य रगन्तत्वेन-ऽन्तोदात्तत्वे “रुद्रहतः” इति भवति ।

आर्यब्राह्मणः—४७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

वृकोदरः—वृकस्येवोदरमस्येति । वृकोदरः । अत्र पूर्वपदप्रकृतिस्वरम्बाधित्वा “उदराद्वेषुषु” इति सूत्रेण पूर्वपदस्याऽन्तोदात्तत्वे “वृकोदरः” इति भवति ।

समपादः—अत्र “त्वत्त्व तमसिमेत्यनुच्चानि” इति सर्वाऽनुदात्तः सम-
शब्दः । पादशब्दो “वृथादीनाञ्च” इत्याऽनुदात्तः । अत्र समाधे “समास-
स्य” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते “समपादः” इति भवति ।

दक्षिणो बाहुः—अत्र “स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा” इति दक्षिणस्याय-
न्तयोः पर्यायेणोदात्तयोः कृतयोः “दक्षिणो बाहुः” “दक्षिणो बाहुः” इति भवति ।

आवसथः—२२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

उष्ट्रकोशी—४७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

४—गतिकारकोपवदात् कृत्—३५ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

निपातस्य चेति—ननु “ऋचि तुनुधमक्षुतङ्कत्रोरुष्याणाम्” इति
सूत्रस्य तुनुषेत्यादीनां निपातत्वात् “निपातस्य च” इत्यनेनैव दीर्घं सिद्धे
त्वादीनां ग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न । अद्रव्यार्थाश्चादयो निपातसङ्ज्ञास्युरेवञ्च द्रव्या-
र्थानां त्वादीनां दीर्घार्थं “निपातस्य च” इति सूत्रस्याऽप्रवृत्त्या त्वादीनां ग्रहण-
स्याऽवश्यकत्वात् । इति शम् ।

५—अनुस्वारो विसर्गश्च कृत्वा चापि पराश्रितौ ।

दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च ॥

व्याख्या—स्वरमनुभवति, इति अनुस्वारः, विविधं सृज्यते, इति विसर्गस्तो
च प्रसिद्धौ । ककारपकारावाश्रयौ ययोस्तौ पराश्रयौ कृत्वा, जिह्वामूलोपोपधमा-
नीययोः पराश्रयत्वकथनेनेतेषामनुस्वारादीनां पूर्वाश्रितत्वं सूचितम् । यद्यपि
खकारफकारयोरप्याश्रयत्वमनयोस्तथा च भेदचतुष्टमापतितम्, तथापि पराश्रित-
त्वरूपसाधर्म्येणानयोर्भेदद्वयमेवाङ्गीकृतम् द्विःस्पृष्ट इति बह्वृचानामेष प्रसिद्धः ।
इलेषेल्लेहेति । उक्तञ्च वर्णरत्नदीपिकायाम्—

“द्विःस्पृष्टता च विज्ञेया उदयोः स्वरमध्ययोः ।

“पदकाले वियुज्यन्ते द्विःस्पृष्टो न भवेत्तदा” इति ।

अत्रापि ‘द्विः स्पृष्ट’ इति पाठो युक्तः । एकविंशतिः स्वराः, पञ्चविंशतिः स्वर-
शाः, अष्टौ यादयः, यमाः, चत्वारः, एवमाष्टपञ्चाशात् इति पूर्वनिरूपिताः । तर्हि
इत्थं त्रिषष्टिः लृकारः प्लुत एव च एवञ्च लृकारस्य प्लुतसम्भवात् चतुःषष्टिर्वर्णाः
इति ज्ञेयम् ।

६—अयोगवाहेति—बाह्वयन्ति निर्वाहयन्ति कार्यमिति बाहाः, अत्रिद्यमानो

योगो वर्णसमाम्नायेषु पाठो येषान्तेऽयोगास्ते च ते वाहाः अयोगवाहाः=अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीयाः इति । कं कः (क)पं इत्यादि कुं खं गुं धुं यमाः, इति यमस्वरूपम् । ननु—

“अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यन्तश्च परतो यदि ।

तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत्सवर्णः पूर्ववर्णयोः ॥

इति नारदीयशिक्षावचनात् ऋकृतन्त्रप्रणेतृवचनाच्च यमानां विंशतित्वमायात् तथा च “वत्वारश्च यमाः स्मृताः” इत्यसङ्गतम् । न नु “कुं खं गुं धुं यमाः” इति न्यासप्रन्थेन तेषां चतुष्टयत्वं “कचटतपाः कुः खछठथफाः खुः” इत्यादि परिभाषया तावतापि तेषां विंशतित्वलाभादिति चेन्न । प्रथमयम द्वितीययमादि भेदेन तेषां विभाजने सङ्ख्याचतुष्टयत्वलाभात् ।

रङ्ग इति—रज्यतेऽनेन पूर्वो वर्णः इति रङ्गो वर्णविशेषः । तथा च नारदः—

“नकारान्ते पदे पूर्वं व्यञ्जनैश्च यवोहिषु ।

अर्द्धमात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया” ॥

यकारवकारहकारेषु परतो व्यञ्जनैर्व्यञ्जकवर्णैरुपलक्षिते नकारान्ते पदे अणुमात्रया पादमात्रया “तदर्थमणु इति पूर्वस्याकारेरर्द्धमात्रा रज्यते इति तदर्थः । नकारस्य रुवे जाते योऽनुनासिको विधीयते स रङ्गः इत्यादि बहवोऽर्थः रङ्गस्येति बोध्यम् । ‘खे अरा’ इत्युदाहरणम् ।

नादिन्—नादप्रयत्नवान् इत्यर्थः । ‘ह’ इत्यादि ।

श्वासिन्—श्वासप्रयत्नवान् इत्यर्थः । ‘फ’ ‘छ’ इत्याद्युदाहरणानि ।

१४३६

सूचना—सूत्रनिर्देशप्रसङ्गे समस्तसूत्रोत्प्लेखनमावश्यकम् ।

१—उपसंवादाशङ्कयोश्च । तयोर्वाचचि संहितायाम् । निष्ठा च द्वयजनात् । मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके ।

एषां सूत्राणामर्थाः लेख्याः ।

२—उक्थशासः । मादयैते । ब्रह्मसामम् । ज्या इयम् । वार्त्रघ्नमितरम् । पीत्वी सोमस्य । भरता जातवेदसम् । ब्रह्मचारिणमिच्छते । वर्चस्याः । तृचं सूक्तम् । वास्तव्यम् ।

एषां मध्ये सप्तसु प्रयोगेषु वैदिकप्रक्रियाकार्याणि शास्त्रनिर्देश-

पूर्वकं प्रदर्शनीयानि ।

३—तुभ्यम् । शरावती । जाया । कल्याणः । आहवनीये । भार्यासौ-
श्रुतः । उपशालम् । अग्निम् । १४

पषां मध्ये पञ्चतु प्रयोगेषु ससूत्रनिर्देशं स्वरविशेषाः प्रतिपाद-
नीयाः स्वरचिह्नानि च प्रदर्शनीयानि । १०

४—उपग्रहः । स्फिग् । नप् । प्रचयः ।

इति सञ्ज्ञाशब्दान् व्याख्याय । दाघर्ति० इति 'प्रसित' इति सूत्रं
समग्रमुद्धरणाय व्याख्यातव्यञ्च । ६

अथवा—'तयोर्वावचि संहितायाम्' इति सूत्रारम्भप्रयोजनं सु-
स्पष्टं प्रतिपादनीयम् ।

५—उदात्तादिस्वराणां 'नवपदशय्या' (नवपदसञ्ज्ञा इति पाठान्तः
रम्) स्वरूपं सोदाहरणं स्पष्टीकर्तव्यम् । ५

अथवा—व्याकरणाङ्गानां वेदपुरुषस्य मुखत्वादिकं केनाभिप्राये-
णेति सयुक्तिकं प्रतिपादनीयम् ।

६—वर्णानां त्रिषष्टित्वं चतुःषष्टित्वं च कथमिति सप्रपञ्चं निरूप-
णीयम् । ५

प्रश्नोत्तराणि—

१—उपसंवादाऽऽशङ्कयोश्च—पणवन्धे आशङ्कायाञ्च लेट् स्यात् इत्य-
र्थः । अहमेव पशुनामीशे । नेज्जिह्वायन्तो नरकं पताम । इत्युदाहरणम् ।
तयोर्वावचि संहितायाम्—इदुतोर्यकारवकारौस्तोऽचि संहितायामित्य-
र्थः । अग्ना ३ याशा । पटा ३ वाशा । अग्ना ३ यिन्द्रम् । पटा ३ बु-
दकम् । इत्युदाहरणानि ।

निष्ठा च छजनात्—निष्ठान्तस्य छचः संज्ञायामादिसदात्तो न त्वाकार
स्यादित्यर्थः । "दत्तः" इत्युदाहरणम् ।

मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके—मात्रादिषु परतो नपुंसकवाचिनि तत्पु-
रुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं स्यादित्यर्थः । भिक्षामात्रम् । पाणिन्युपज्ञम् । नन्दा-
पक्रमम् । इषुच्चायम् । इत्युदाहरणानि ।

२—उक्थशासः—उक्थानि उक्थैर्वा शंसन्ति इति उक्थशासः यजमानाः ।

अत्र “मन्त्रे श्वेतवहोऋक्षसुपुरोडाशो णिवन्” इति सूत्रेण णिवन् प्राप्ते तम्प्रवाध्य “श्वेतवहोदीनां ङस्पर्दस्येति चक्षम्” इति ङसि ङित्वाट्टिलोपे नलोपे “अत उपधायाः” इति सूत्रेण वृद्धौ जसि विभक्तावनुबन्धलोपे सस्यः सत्वे विसर्गे “उक्थशासः” इति भवति ।

मादयैते—मादाति ण्यन्तात् लेटि आतामि शपिगुणेऽयादेशो मादय + आतामिति स्थिते “आत ऐ” इति सूत्रेणाऽकारस्य ‘ऐ’ आदेशो “टित आत्मनेपदानां टेरे” इत्येत्वे “मादयैते” इति भवति ।

ब्रह्मसामम्—३८ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

ज्या इयम्—१५ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

वार्त्तनमितरम्—इत्यत्र “अङ्ङुङतरादिभ्यः पञ्चभ्यः” इति सूत्रेण रुमोरदङादेशो प्राप्ते “नेतराच्छुन्दसि” इति निषेधे “अतोऽम्” इति अमादेशो पूर्वरूपे “इतरम्” इति भवति ।

पीत्वी सोमस्य—२९ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

भरता जातवेदसम्—२३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

ब्रह्मचारिणमिच्छते—अत्र प्रयोगे परस्मैपदविधादेन इच्छति इति प्राप्ते “व्यत्ययो बहुलम्” इति सूत्रेण व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदे “इच्छते” इति भवति लोके तु “ब्रह्मचारिणमिच्छति” इति ।

वर्चस्याः—वर्चस्वानुपधानो मन्त्रः आसामिष्टकानां वर्च(याः इति । अत्र “तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकास्तु लुक् च मतोः” इति सूत्रेण यत् प्रत्यये मतुपो लुकि च जसि अनुबन्धलोपे सस्य सत्वे विसर्गे “वर्चस्याः” इति सिद्धम् ।

तृचं सूक्तम्—४२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

वास्तव्यम्—वास्तुनि भवमिति विग्रहे “ऋतव्यवास्तव्यवास्तवमाध्वी-हिरण्यथानि द्युन्दसि” इति सूत्रेण वास्तुशब्दात् निपातनात् यत् प्रत्यये यणादेशो च विभक्तिकार्ये “वास्तव्यम्” इति भवति ।

३—तुभ्यम्—अत्र “ङयि च” इति सूत्रेणाऽद्युदात्ते “तुभ्यम्” इति भवति ।

शरावती—१ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

जाया—२१ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

कल्याणः—४७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

आहवनीये—३५ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

भार्यासौश्रुत इति—सुष्ठु शृणोति इति सुश्रुत्, तस्यापत्यं सौश्रुतः । भार्याप्रधानः सौश्रुत इति विग्रहे शाकं पार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपी समासे “गोत्राऽन्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे” इति सूत्रेण पूर्वपदस्याद्युदात्तत्वे “भार्या-सौश्रुतः” इति भवति ।

उपशालम्—अत्राऽव्ययीभावसमासे ‘कूलतीरतूलमूलशालाऽक्षस-ममव्ययीभावे’ इति सूत्रेणोत्तरपदस्याऽऽद्युदात्तत्वे “उपशालम्” इति भवति ।

अग्निम्—२२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

४—उपग्रहः—परस्मैपदात्मनेपदे इति ‘सुतिङ्गुपग्रह’ इत्यत्र स्पष्टम् ।

नप्—नपुंसकम् । ‘नन्विषयस्यानिसन्तस्ये’त्यत्र स्पष्टम् ।

प्रचयः—स्वारितसमुदायस्य संज्ञा ।

दाधर्तिदधर्तिदधर्षिवोभूतुतेतिकतेऽलभ्याऽऽपनीफणत्संसनिष्यद-त्करिकत्कनिकदद्गरिस्त्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतं व-रीवृजन्ममृज्यागनीगन्तीति च” इति सूत्रस्वरूपम् । दाधर्तीत्यादयोऽष्टादश निपात्यन्ते । तद् यथा—आद्यास्त्रयो धृङो धारयतेर्वा । भवतेर्यङ्लुगन्त-स्य गुणाऽभावः । तेन भाषायां गुणो लभ्यते । तिजेर्यङ्लुगन्तात्तद् । इयतेर्लटि ह-कादिः शेषाऽपवादो रेफस्य लत्वमिवाऽभावश्च निपात्यते । अलर्षि युध्मखज-कृत्पुरन्दर । सिपा निदेशो न तन्त्रम् । अलर्ति दक्ष उत । फणतेराङ्पूर्वस्य यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य नीगागमो निपात्यते । अन्वापनीफणत् । स्य-न्देः सम्पूर्वस्य यङ्लुकि शतरि अभ्यासस्य निक् धातुसकारस्य षत्वम् । करोते-र्यङ्लुगन्तस्याऽभ्यासस्य चुत्वाऽभावः । क्रन्देर्लुङि च्लेरङ् द्विवचनमभ्यासस्य चु-त्वाऽभावो निगागमश्च, कनिकदज्जनुषम् । अक्रन्दोदित्यर्थः विमत्तरभ्यास-स्य जश्त्वाऽभावः । वि यो भरिभ्रदोषधीषु । ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्या-सस्य विगागमो धातोर्ङ्कारलोपश्च । दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य । व्युतेरभ्या-सस्य सम्प्रसारणाऽभावोऽत्वं विगागमश्च । दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः । तरतेः शतरि श्लौ अभ्यासस्य रिगागमः । ‘सहोर्जा तरित्रतः’ । स्येः शतरि श्लौ द्विती-यैकवचने रिगागमोऽभ्यासस्य । वृजेः शतरि श्लौवभ्यासस्य रीक् । मृजेर्लिटि णल्

अभ्यासस्य रुक् धातोश्च युक् । गमेराद्पूर्वस्य लटि इलावभ्यासस्य चुत्वाऽभावो
नीगागमश्च । वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णम् । असितरुक्भितस्तमितो-
त्तमितचत्तचिकस्ताविशस्तृशंस्तृशास्तृनरुत्तरुत्तरुत्तरुत्तरुत्तरुत्तरुत्तरुत्तरु-
ज्वलितिक्षरितिवमित्यमितीति च । एतेऽष्टादश निपात्यन्ते । तत्र प्रसु रुक्-
म्भु स्तम्भु एषामुदित्वाणिष्ठायामिट्प्रतिषेधे प्राप्ते इण्निपात्यते । युवं शचीभि-
र्ग्रसिताममुञ्चतम् । विष्कभिते अजरे । येन रुवः स्तमितम् । सत्येनो-
त्तमिता भूमिः । त्यमितेत्येव सिद्धे उत्पूर्वस्य पुनर्निपातनमन्योपसर्गपूर्वस्य मा
भूदिति । चते याचने । कस गतो । आभ्यां कस्येडभावः । चत्तो इतश्चत्ता-
मुतः । त्रिधा ह श्यावमश्चिना विकस्तम् । उत्तानाया हृदयं यद्विक-
स्तम् । निपातनबहुत्वाऽपेक्षं सूत्रे बहुवचनं 'विकस्ता' इति । तेनैकवचनान्तोऽ-
पि प्रयोगः साधुरेव । शसु शंसु शासु एभ्यस्तृच इडभावः । एकस्त्वष्टुरश्च-
स्याविशस्ता । ग्रावग्राभ उत शंस्ता प्रशास्ता । पोता तरतेर्वृड्बृजोश्च
तृच उट् ऊट् एतावागमौ निपात्येते । तरुतारं रथानाम् । तरुतारम् । वरु-
तारम् । वरुतारम् । वरुत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु । अत्र ङीबन्तनिपातनं प्रप-
ञ्चार्थम् । वरुतृशब्दो हि निपातितः । ततो ङीपा गतार्थत्वात् । उज्वलादिभ्यश्चतु-
र्भ्यः शपः इकारादेशो निपात्यते । ज्वल दीप्तौ । क्षर संचलने । दुवम् उद्विरणे ।
अम गत्यादिषु । इह क्षरितीत्यस्याऽनन्तरं क्षमितीत्यपि केचित्पठन्ति । तत्र क्षमूष्
सहने इति धातुबोधः । भाषायान्तु प्रस्तस्कब्धस्तब्धोत्तब्धचितितविकसिताः ।
विशसिता । शंसिता । शासिता । तरिता । तरीता । वरिता । वरीता ।
उज्वलात् । क्षरति । पाठान्तरे । क्षमति । वमति । अमति । इति शम् ।
'तयोर्वाचची'तिसूत्राऽऽरम्भफलम्—७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

५-अन्तोदात्तमाद्युदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।

मध्येदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या ।

अन्तोदात्त इत्याद्यारम्य त्र्युदात्तमित्येतत्पर्यन्तं स्वराणाम् नामनिर्देशः एवञ्च
नवसु पदेषु शय्या स्थितिर्निर्दिष्टानां स्वराणामित्यर्थः ।

अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वरवृहस्पति रिन्द्रावृहस्पती ।

इमानि उदाहरणानीति क्रमशः स घटनीयम् ।

अग्निरित्यन्तोदात्तं फिट्स्वरेण प्रत्ययस्वरेण वा सोम इत्याद्युदात्तं वृषादित्वात्

वृषादीनाञ्चेति भावः । प्रेत्युदात्तं "निपाता आद्युदात्ता" इत्यनेन व इत्यनु-
दात्तम् "अनुदात्तं सर्वमपादादौ" इत्यधिकृत्य "बहुवचनस्य वस्नसौ"
इति तद्विधानात् । वीर्यनीचस्वरितम् । "वित्त्वभक्ष्यवीर्याणि छन्दसि" इत्यन्तं
स्वरितम् । फिटस्वरेण हविशब्दस्याऽन्तोदात्तत्वे "अनुदात्तौ सुप्पितौ" इत्या-
मोऽनुदात्तत्वे मध्योदात्तत्वम् । "न्यङ्स्वरौ स्वरितौ" इति स्वः स्वरि-
तम् । "उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्" इति पूर्वोत्तरपदयोः प्रकृतिस्वरेणाऽभ्यु-
दात्तत्वे बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तं जातम् । उत्तरीत्या द्व्युदात्तबृहस्पतिशब्दस्येन्द्रशब्देन
समासे "देवताद्वन्द्वे च" इति स्वरे इन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम् ।

एषु नवसु पदेषु स्वराणां सर्वेष्वपि वेदेषु स्थितिर्नियतेति भावः ।

व्याकरणाद्यङ्गानामिति-वेदस्य पादौ छन्दः गायत्र्यादिच्छन्दसां ज्ञापकं
शास्त्रं पिङ्गलसूत्रादि, पादविकलस्य गमनाऽभाववत्, अनुष्टुपादिश्छन्दोऽ-
न्तरेण तदुच्चारणाऽसम्भवात् । इस्तौ तस्य कल्पः कल्पसूत्रं वेदविहितकर्मणामानुपू-
र्व्येण कल्पनाशास्त्रम् इस्ताऽभावेऽङ्गिनः क्रियासामर्थ्यविरहः इव कल्पसूत्रज्ञानाऽ-
भावेऽधीतोऽपि वेदो यागाद्यनुष्ठानानर्हः । ज्योतिषां नक्षत्रादिज्ञानानामयनं स्थानं
ज्योतिषशास्त्रं चक्षुर्नेत्रकल्पं वेदस्य यज्ञादिशुभकर्मणाम् करणसमयज्ञापकत्वात् ।
तथा तस्य निरुक्तं पदविभागमन्त्रार्थदेवतानिरूपणार्थं शास्त्रं श्रोत्रं निर्वचनं विना-
श्रुतोऽपि सोऽश्रुत एव । वेदस्य शिक्षा स्वरवर्णोच्चारणज्ञापकं शास्त्रं घ्राणं नासिका
घ्राणेन्द्रियविकलस्य गन्धाग्रहणवच्छिक्षां विना सम्यक् स्वरवर्णोच्चारणविध्यभावे
फलवैगुण्यप्रसङ्गः सुप्रयुक्तस्यैव फलजनकत्वात् । व्याकरणशब्दबोधकमल्लेच्छत्वका-
रकं शास्त्रं मुखं तस्य, वाग्निन्द्रियं विना हृदिस्थस्यापि पदार्थस्य परावबोधनाक्षम-
त्वमेवं व्याकरणमन्तरा यथावद्विभक्त्यादिकरणासामर्थ्यम् । एतेन मध्य-
त्रयस्य वेदज्ञानेन्द्रियरवमितरत्रयेण कर्मेन्द्रियत्वञ्च प्रदर्शितम् । तथा च एकेना-
पि विकलो न कार्यः । साम्प्रतं तदज्ञानि पृथक् पृथक् निरूप्य साङ्गतदध्ययने
फलमाह—

"तस्मात् साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते" ॥ इति ।

अधीत्यैवेत्येवकारेण सर्वाङ्गशून्यस्य कतिपयाङ्गसहितस्य वाऽध्ययने ब्रह्म-
लोकेऽध्येतुः सत्कारानर्हत्वं सूचितम् । इदं साङ्गवेदाध्ययनकथनं पुराणादिसहित-

स्याप्युपलक्षणम् । तथा च याज्ञवल्क्यः—

“पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः,

वेदस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश” ॥ इति ।

६-वर्णानां त्रिषष्टित्वं चतुःषष्टित्वञ्च ५७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

१६४०

सूचना—स्वरोपदर्शनाऽवसरे स्वरविहानि कर्तव्यानि ।

१—घृतस्य यजते । तारिषत् । अपलुपं नाशकत् । ओजस्या तनूः ।

रेवान् । चक्रा जरसम् । जनीयन्तो न्वग्रहः । अद्यामावास्येत्या-
त्य ३ । अग्निचित् भायाश्त् । नृमणाः ।

एतेषां मध्ये पञ्चसु वैदिकविशेषकार्याणां सप्रमाणमुल्लेखो विधेयः ।

अथवा—‘तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतोष्टकासु लुक् च मतोः’

‘अङ्ग इत्यादौ च’ इति सूत्रे सोदाहरणं व्याख्याय, ‘अकृतसार्वधा-
तुकयोः’ इति दीर्घेणैव लक्ष्ये सिद्धे “अश्वाघस्यात्” इति सूत्रस्य
फलमस्ति नवेति विवेचनीयम् ।

१०

२—‘सति शिष्टस्वरवलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्यः’ इत्यस्य फलप्रमा-
णे समुल्लिख्य खलज्याशा । क्षत्रिया । पटुपटु । उच्चारपदेन
प्रस्थितः । सुगन्धितेजनाः । एतेषु स्वरविशेषाः सशास्त्रं प्रद-
र्शनीयाः ।

३—गमनज्येष्ठम् । द्विसुवर्णधनम् । शितिपादः । कृष्णाजिनम् । अ-
त्यङ्कुशो नागः ।

१०

एषु ससूत्रं स्वरान्निर्दिश्य ‘तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्णयोः’
इति सूत्रे कुत्सनाऽभीक्ष्ण्यग्रहणं कस्य विशेषणमिति । सफलम-
भिधीयताम् ।

१०

४—‘तास्यनुदात्तेनङित्०’ ‘कुरुगार्हपतरिक्त०’ इति सूत्रद्वयं सार्थकं
वर्णयित्वा ‘गतिरनन्तरः’ इत्यत्र ‘अनन्तर’ ग्रहणस्य प्रयोजनं
विशदं निरूपणीयम् ।

१०

५—‘अग्निः सोमः प्र वो वोय्ये हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती’
अत्र स्वरान् प्रदर्श्य ।

अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।

द्विरोष्ठ्यौ तु विगृहणीयात् यत्रौकारवकारयोः ।

इति कारिका सुस्पष्टं व्याख्येया ।

१०

अथवा—कीदृशो रङ्गवर्णः तदुच्चारणप्रकारश्च कः इति, ऊष्मणां कति गतय इति च निगद्य—

यद्योभावप्रसन्धानमुकारादि पर पदम् ।

स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यदूह्यक्तमूष्मणः ॥

इति पद्यस्याशयो निरूपणीयः ।

१०

प्रश्नोत्तराणि—

१—घृतस्य यजते—अत्र प्रयोगे “यजेश्च करणे” इति सूत्रेण षष्ठी तेन “घृतस्य यजते” इति भवति ।

तारिषत्—२३ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

अपलुपं नाशकत्—अपलोप्तुमित्यर्थे, अपपूर्वकच्छेदनार्थकलुपधातोः “श-कि णमुल्कमुलौ च” इति सूत्रेण कमुल्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे क्त्वाद्गुणाऽभावे विभक्तिकार्ये “अपलुपम्” इति । एवञ्च “अपलुपं नाशकत्” इति भवति ।

ओजस्या तनूः—ओजो यस्याः यस्यां वा इति विग्रहे मनुपम्बाधित्वा “म-त्वर्थे मासतन्वोः” इति सूत्रेण यत्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे जसि विभक्तौ जकारस्ये-त्संज्ञायां लोपे च दीर्घे सस्य सत्वे विसर्गे “ओजस्या तनूः” इति भवति ।

रेवान्—रयि शब्दात् “तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुप्” इति सूत्रेण मनुपि “रयेर्मतौ बहुलम्” इति सम्प्रसारणे “सम्प्रसारणाच्च” इति सूत्रेण पूर्व-रूपे “छन्दसीरः” इत्यनेन मकारस्य वकारे गुणे विभक्तिकार्ये “रेवान्” इति सिद्धम् ।

चक्राजरसम्—चक्रेति लिटो मध्यमपुरुषबहुवचनस्य रूपमत्र “द्वचोऽत-स्तिङः” इति सूत्रेण दीर्घे “चक्रा” इति भवति ।

जनीयन्तो न्वग्रवः—जनमिच्छन्तः इति विग्रहे क्यचि प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे “अपुत्रादीनामिति वाच्यम्” इति बलात् “क्यचि च” इति सूत्रेणाऽव-र्णस्येकारे लटि, लटः शत्रादेशे जसि विभक्तिकार्ये “जनीयन्तः” इति भवति ।

अद्याऽमावास्येत्यात्थ३—अत्र प्रयोगे “निगृह्याऽनुयोगे च” इति सूत्रेण वाक्यस्य टेः प्लुतत्वे “अद्याऽमावास्येत्यात्थ ३” इति भवति ।

अग्निचित् भाया३ त्—अत्र प्रयोगे “चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने”

इति सूत्रेण प्लुतत्वे “अग्निचित् भायाः ३ त्” इति भवति ।

नृमणाः—अत्र प्रयोगे “छन्दस्यृद्वग्रहात्” इति सूत्रेण णत्वे “नृमणाः” इति भवति ।

तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः—तदस्ति अस्य अस्मिन् वा तद्वान् । उपाधीयते इत्युपाधनम् । तथा च मत्वन्तात्प्रथमासमर्थादासामिति षष्ठ्यर्थे यस्याद्यत्प्रथमासमर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत्स भवति, यत्तदासामिति निर्दिष्टमिष्टकाश्चेत्ता भवन्ति मतोश्च लुक् । अथवैवं बोध्यम्—मत्वन्तप्रकृतिकात्प्रथमान्तादुपधानकरणीभूतमन्त्रार्थकादिष्टकारूपसम्बन्धनि यत् स्यान्मतोश्च लुक् । इत्यर्थः । उदाहरणञ्चात्र—वर्चस्याः । ऋतव्याः ।

अङ्ग इत्यादौ च—प्रकृत्या भवतीतीत्यस्य सम्बन्धः । अतिक्रान्तप्रत्ययमर्शिना तच्छब्देन इति शब्दार्थं व्याचष्टे । तस्याऽङ्गशब्दस्याऽऽदिस्तदादिः तद्वरूपो योऽकारस्तस्मिन् परे पूर्वो य एङ् स प्रकृत्या भवतीत्यर्थः ।

नन्वत्र चकारः किमर्थं इति चेच्छृणु । असति चकारेऽङ्गशब्दस्यैवैङ् तदादावति परतः प्रकृत्या भवतीत्यर्थः । तथा च “अङ्गे अङ्गे” इत्यत्रैव स्यात्, “अङ्गे अदीव्यत्” इत्यत्र न स्यात् सति तु तस्मिन् अङ्गशब्दस्य य एङ् यत्र कुत्रचित् अतिप्रकृत्या भवति तदादौ चाऽति परतो यः कश्चिदेङ् स प्रकृत्या भवतीत्ययमर्थो भवति । तेन “अङ्गे अङ्गे अदीव्यत्” “प्राणो अङ्गे” इत्युभयत्राऽपि भवति ।

अश्वाघस्यादिति—ननु “अश्वायन्तो मघवन्” मात्वा वृका अघायवः” इत्यादौ “अकृत्सार्वधातुकयोदीर्घः” इति सूत्रेण दीर्घेणैव सिद्धे “अश्वाघस्यात्” इति सूत्रं व्यर्थमिति चेन्न “न छन्दसी”ति निषेधो नेत्वमात्रस्य किन्तु दर्घस्याऽपीति ज्ञापनेन “अश्वायन्तो मघवन्” मा त्वा वृका अघायवः” इत्यादीनां सिद्धयेऽस्य (अश्वाघस्यात् इत्यस्य) आवश्यकत्वात् ।

२—सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्यः—इत्यस्य फलम् ७ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

खलप्याशा—२४ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

क्षत्रिया—अत्र प्रयोगे “यान्तस्याऽन्त्यात्पूर्वम्” इति फिदसूत्रेण मध्योदात्ते वा क्षत्रशब्दात् “क्षत्राद्धः” इति सूत्रेण घविधानेन “आद्युदात्तश्च” इति

सूत्रेण प्रत्ययस्याऽऽद्युदात्तत्वे “क्षत्रिया” इति भवति ।

पटुपटु — अत्र “प्रकारे गुणवचनस्य” इति सूत्रेण द्वित्वे “प्रकारा-
दि द्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः” इति फिट्सूत्रेण परस्यान्तोदात्ते “पटुप-
टु” इति भवति ।

ननु “कर्मधारयवदुत्तरेषु” इति कर्मधारयवद्भावादेव “समासस्य”
इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते षिद्धे व्यर्थमिदं सूत्रमिति वाच्यम्, तस्य पाणिनीयात् पूर्वं
प्रवृत्तत्वेनाऽदोषात् ।

उच्चारपदेन प्रस्थितः—उच्चारो घञन्तस्तेन “थाथ घञ्क्ताजबित्रका-
णाम्” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्तः ततश्च उच्चारस्य पदमिति समासे “समासस्य”
इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते “पदेऽपदेशे” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे “उच्चा-
रपदेन प्रस्थितः” इति भवति । उच्चारः पुरीषक्रिया तस्य पदेन व्या-
जेन प्रस्थितः गतः इत्यर्थः ।

सुगन्धितेजनाः—अत्र प्रयोगे “सुगन्धितेजनस्य ते वा” इति आदि-
द्वितीयं ते शब्दश्चेति त्रयः । पर्यायेणोदात्ताः तेन “सुगन्धितेजनाः” सुगन्धि-
तेजनाः । “सुगन्धितेजनाः” इति भवति ।

३—गमनज्येष्ठम्—अत्र समासे मयूरव्यंसकादित्वात् राजदन्तादित्वात् वा
विशेषणस्य ज्येष्ठ इत्यस्य परनिपाते “समासस्य” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते प्राप्ते
“अज्याऽवमकनृपापवत्सु भावे कर्मधारये” इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरे
“गमनज्येष्ठम्” इति भवति ।

द्विसुवर्णधनम्—द्वे सुवर्णौ परिमाणमस्येति द्विसुवर्णं तदेव धनं द्विसुवर्णध-
नमत्र समासानन्तरं “समासस्य” इति सूत्रेण अन्तोदात्ते प्राप्ते “हिरण्यपरि-
माणं धने” इति सूत्रेण वैकल्पिकपूर्वपदप्रकृतिस्वरे “द्विसुवर्णधनम्” पक्षे
समासस्वरेऽन्तोदात्ते “द्विसुवर्णधनम्” इति भवति ।

शितिपादः—अत्र शितिरिति “वर्णानां तणतिनितान्तानाम्” इति सू-
त्रेणाऽऽद्युदात्तः पादशब्दश्च वृषादित्वात् “वृषादीनाञ्च” इति सूत्रेणाऽऽद्युदात्तेऽत्र
समासे सति “समासस्य” इति सूत्रेण अन्तोदात्ते प्राप्ते तन्प्रवाच्य “शितेनि-
त्याऽबह्वज्वहुव्रीहावमसत्” इति सूत्रेण शितेः परस्य नित्याबह्वचः उत्तरपदस्य
प्रकृतिस्वरे “शितिपादः” इति भवति ।

कृष्णाऽजिनम्—अत्र प्रयोगे मित्राऽजिनयोरुत्तरपदयोरन्त उदात्तः स्यादित्यर्थक “संज्ञायां मित्राजिनयोः” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते “कृष्णाऽजिनम्” इति भवति ।

अत्यङ्कुशो नागः—अङ्कुशमतिक्रान्त इत्यङ्कुशो नाग इति विग्रहे समासे समासप्रयुक्तकार्ये ‘अत्यङ्कुश’ इत्यत्र अतेः परमकृदन्तं पदशब्दश्चान्तोदात्तः स्यादित्यर्थक “अतेरकृतपदे” इति सूत्रेणाऽन्तोदात्ते “अत्यङ्कुशो नागः” इति भवति ।

तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोरिति—ननु किं कुत्सनाऽभीक्ष्ण्यग्रहणं गोत्रादीनां पाठविशेषणम्, एतयोरर्थयोगोत्रादीनि भवन्ति, तानि च तिङः पराण्यनुदात्तानि भवन्ति, आहोस्विदनुदात्तविशेषणं—तिङः पराणि गोत्रादीन्यनुदात्तानि भवन्त्येतयोरर्थयोरिति । अस्मिन् विचारे निर्णयमाह—‘कुत्सनाऽभीक्ष्ण्यग्रहणं’ पाठविशेषणम् । अयं चार्थो योगविभागात्लभ्यते । ‘तिङो गोत्रादीनीत्येको योगोऽनुदात्तविधानार्थः । ‘कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोरिति द्वितीयो योगः । गोत्रादीनीत्येव । परिभाषेयम् । इह शास्त्रे गोत्रादीनि कुत्सनाऽभीक्ष्ण्यविषयाण्येव ग्राह्याणि । तेन किं फलं सिद्धं भवतीति तेन अन्यत्राऽपि (चनचिदिबगोत्रादितद्विज्ञानेऽङितेष्वगतेरित्यत्राऽपि) गोत्रादिग्रहणे कुत्सनादावेव कार्यं ज्ञेयमिति शम् ।

४—**तास्यनुदात्तेदिति**—“तास्यनुदात्तेऽङ्गिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमङ्गिङोः” इति सूत्रस्वरूपम् । सूत्रार्थश्च । तासेरनुदात्तेतो ङिददुपदेशादकारान्तोपदेशाच्च परं लसार्वधातुकमनुदात्तं स्यात्, हुङ्गिङौ वर्जयित्वा ।

कुरुगार्हपतेति—“कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरस्यङ्गिनीलद्वङ्गरूपापारेवङ्गवातैतिलकद्रुः परयकम्बलो दासीभाराणाञ्च” इति सूत्रस्वरूपम् । एषां सप्तानां समासानां दासीभारादेश्च पूर्वपदं ऽकृत्या स्यात्, इत्यर्थः ।

गतिरनन्तर—इति सूत्रेऽनन्तरग्रहणफलमिति—“गतिरनन्तरः” इति सूत्रस्याऽनन्तरग्रहणफलमाह “अभ्युद्धृतः” इति इह च हृतशब्दस्य उच्छब्देन समासे पुरोहितमित्यत्रैव गतिस्वरेणाऽऽद्युदात्त उद्धृतशब्दः । तस्य पुनरभिज्ञब्देन समासः । तस्य “कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापिग्रहणम्” इति परिभाषया उद्धृत शब्दः कान्तः उत्तरपदम् । एवं समासाऽन्तोदात्तत्वे प्राप्ते, तद्वाधकाऽव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरवे, तदपवादे कृत्स्वरे, तदपवादस्थायादिस्वरः प्राप्तस्तमपोढाऽमेर्यं स्वरः स्यात् सोऽनन्तरग्रहणेन वार्यते ।

नन्वनन्तरग्रहणेनाप्यसौ दुर्वारः कृद्ग्रहणपरिभाषयोद्धृतशब्दस्य कान्तस्वेऽमे-
दस्तदाऽनन्तर्यसत्त्वादिति चेन्मैवम् । अनन्तरग्रहणसामर्थ्याद्धि धातोरनन्तराग-
तिराश्रीयते । अभिश्च न तथा ।

नन्वेवं मा भूदमेः स्वरः इष्टसिद्धिस्तु कथम् ? अभ्युद्धृतशब्दे हि उच्छब्दस्य
स्वरः इष्यते “ससृष्टं धनमुभयं समाकृतम्” इति मन्त्रे समाकृतशब्दे आठः
स्वरदर्शनात् । न चासौ प्रकृतसूत्रेण सिद्धयति । प्रथमसमासे तत्प्रवृत्तावपि द्वितीय-
समासे थाथादिस्वरस्य प्राप्तेरुक्तत्वात् । न च तं बाधित्वा गतिस्वरः प्रवर्तते,
इति वाच्यम् । द्वितीयसमासे उदः पूर्वपदत्वाऽभावात् । अत्रोच्यते—धातोरनन्तर
इति व्याख्यानादेव पूर्वपदत्वं विनापि स्वरोऽयं प्रवर्तते । नहि कप्रकृतिभूतं धातु-
म्प्रति पूर्वपदत्वं गतेः सम्भवति । तस्मादभ्युद्धृतं समाकृतमिति तावत्सुस्थम् ।

५—“अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषां स्वर्गुहस्पतिरिन्द्रावृहस्पती”

अग्निरित्यन्तोदात्तं फिट्स्वरेण प्रत्ययस्वरेण वा । सोम इत्याद्युदात्तं वृषादि-
त्वात् वृषादीनाञ्चेति । प्रेत्युदात्तं “निपाता आद्युदात्ताः” इत्यनेन । व इ-
त्यनुदात्तम् “अनुदात्तं सर्वमपादादौ” इत्यधिकृत्य “बहुवचनस्य वसन्-
सौ” इति तद्विधानात् । वीर्यं नीचस्वरितम् “क्षित्वभक्ष्यवीर्याणि छन्दसि”
इत्यन्तं स्वरितम् । फिट्स्वरेण हविश्शब्दस्याऽन्तोदात्तत्वे “अनुदात्तौ सुप्पितौ”
इत्यामोऽनुदात्तत्वे मध्योदात्तत्वम् । “न्यङ्स्वरौ स्वरितौ” इति स्वः स्वरितम्
“उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्” इत्यनेन पूर्वोत्तरपदयोः प्रकृतिस्वरेणाऽऽद्युदा-
त्तत्वे वृहस्पतिरिति द्व्युदात्तं जातम् उकरीत्या द्व्युदात्तवृहस्पतिशब्दस्येन्द्रशब्देन
समासे “देवता द्वन्द्वे च” इति स्वरे इन्द्रावृहस्पती इति त्र्युदात्तम् ।

अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।

द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥

व्याख्या—अत्र सर्वत्रोच्चारयितव्य इत्यस्य शेषो बोध्यः । विवृताविति ।
विवेकेन पृथग्भावेन वर्तते इति विवृतिः तथा च नारदः—

“विवृतयश्चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम् ।

अक्षराणि नियोगेन तासां नामानि मे शृणु ॥

ह्रस्वादि १ वत्साऽनुसृता २ वत्सानुसारिणी चाप्रे ३ पाक-
वत्युभयोर्ह्रस्वा दीर्घवृत्ता ४ पिपीलिका ।

क्रमश एतदुदाहरणानि—१ अग्न आयाहि, २ प्रेष्टवो अतिथिम्,
३ अग्न इत्येतरा गिरः, ४ निष्प एवाना आयुधानीव इति । विरामे
पुरतो वर्णोच्चारणाऽभावे, अक्षरद्वये संयुक्ताक्षरद्वये यत्र पदे ओकारौकारौस्तस्तत्र पदे
तयोरुच्चारणे ओष्ठौ द्विः वारद्वयं विगृहणीयात् पृथक् कुर्यात्, अनुस्वारादीबोष्ठद्वयं
द्विः, पृथक्कृत्योच्चारयेदित्याशयः । यत्रौकारेत्यत्र ओकारस्य औकारस्य वा परत्वे
संहितायास्तुल्यत्वेन विनिगमनाविरहादौकारोऽपिच्छेतव्यः इति दिक् ।

रङ्गवर्णस्य लक्षणानि—रज्यतेऽनेन पूर्वं वर्णः इति रङ्गो वर्णविशेषः । नकारस्य
रुत्वे जाते योऽनुनासिको विधीयते स रङ्गः । रङ्गोच्चारणप्रकारः—

यथा—सौराष्ट्रिका नारी तर्कं इत्यभिभाषते ।

एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ॥

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन् नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम् ।

दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥

अत्र याज्ञवल्क्यशिक्षाऽपि—

रङ्गे चैव समुत्पन्ने न ग्राह्यं पूर्वमक्षरम् ॥

स्वरं दीर्घं प्रयुञ्जीत पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥

हृदये चैकमात्रस्तु अर्द्धमात्रस्तु मूर्द्धनि ॥

नासिकायां तथाऽर्द्धं रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन् ॥

मार्द्धवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ २ इति निदर्शनम् ॥

मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ॥

सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥ इति ।

ऊष्मणः अष्टविधा मतयो यथा—

ओभावश्च विवृतिश्च शषसा रेफ एव च ॥

जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥

अत्रत्योदाहरणानां प्रयोजनञ्चेत् तर्हि ५८ पृष्ठे द्रष्टव्यम्

यद्योभावप्रसन्धानमिति—४४ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

इति शुभम्भूयात् ।

अथ परिशिष्टम्

वैदिकप्रक्रियायाः लौकिकप्रक्रियातो भेदहेतुनिरूपणम्—

ननु 'रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजन'मिति भाष्यात् "ब्राह्मणेन निष्कारणो-
धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इति श्रुतेश्च कृत्स्नस्यैव व्यकरणस्य वैदिक-
शब्दसाधुत्वार्थं प्रवृत्ततया—

लोके पदपदार्थौ यौ न तौ वेदेऽथवात्र तौ । रूपभेदात् पदं भिन्नमुत्तानादिमिदा स्फुटा ॥
वर्णैकत्वात् पदैकत्वं क्वाचित्की रूपभिन्नता । प्रायिकेण पदैक्येन तदर्थैक्यं तथाविधम् ॥

इति जैमिनीयन्यायमालोचनीत्या वैदिकशब्दानां लौकिकशब्दाऽभिन्नतया च
स्वरवैदिकप्रक्रियायोः लौकिकप्रक्रियातः पृथक्कृतेः कः आशय इति चेदुच्यते—लौकि-
कशब्देभ्यः आत्मना जहार देवाः दैवैरित्यादिभ्यो भिन्नानां त्मना, जभार, देवासः,
देवेभिः, इत्यादीनां वैदिकशब्दानां सत्त्वेन तन्मात्रव्युत्पादकवैदिकप्रक्रियायाः पृथक्-
करणम् । अत एव केषां शब्दानां लौकिकानां वैदिकानाञ्चेति महाभाष्ये लौकिकेभ्यो
भिन्नतयैव वैदिकान् व्याहरति भगवान् भाष्यकारः । स्वरस्तु लौकिकप्रयोगे काव्या-
दौ नाद्रियते इति तत् प्रक्रियाया अपि लौकिकप्रक्रियातः पृथक् करणमिति उपरित-
नोक्तन्यायमालास्थपद्याभ्यामपि प्रायिकेण पदैक्येनेत्यनेन लौकिकेभ्यो भिन्ना अपि
वैदिकाः शब्दाः सन्तीति सूचितमित्यलम् ॥

अनुदात्तं पदमेकवर्जमित्यस्य पारिभाषिकत्वनिरूपणम्—

परिभाषेयं स्वरविधिविषयेति । नेदं संज्ञासूत्रम् संज्ञाविधायकसूत्राणां
प्रायः प्रथमाऽध्याये पाठदर्शनेनास्यातथात्वात् । संज्ञासंज्ञिभावस्याऽप्रतीतिश्च ।
नापि विधिसूत्रम्, तथा सति क एको वर्जनीय इत्यस्याऽप्रतीत्यापत्तौ विनिगमनावि-
रहात् तत्तच्छास्त्रविहितोदात्तस्वरितानां सर्वेषामेव वर्जनापत्तौ आमलकीजः
इत्यत्र उदात्तचतुष्टयश्रवणाऽपत्तेः, तत्र हि ङीषः प्रत्ययस्वरेणाङस्य कृत्स्वरेणोदात्त-
त्वम् "दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्वटं जे" इति पूर्वपदाऽन्तोदात्तत्वम् "अन्त्यात्पूर्वं
वह्वृचः" इति लकाराकारस्योदात्तत्वम् । इति युगपदुदात्तचतुष्टयं श्रूयते ।
अस्य तु मकाराकारोऽवकाशः स्यात् ।

नापि नियमसूत्रम्, अनुदात्तस्य केनाप्यप्राप्तेः । नाप्यतिदेशसूत्रम्,
वतिघटितत्वाभावात् । नाप्यधिकारसूत्रम्, अस्वरितत्वात् ।

तत्तत्सूत्रविधेयानां वचनसामर्थ्यादेव निघाताऽप्रवृत्तौ एकवर्जमित्यस्य वैयर्थ्या-
पत्तेश्च आधुदात्तश्च "समानोदरे शयित ओ चोदात्तः" इत्यादीनामसंग्रहापत्तेश्च
इति परिशेषात्परिभाषासूत्रमिति स्थितम् ।

"भीहीभृद्भुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्वं पिति" ।

नन्वत्र प्रत्ययादिति व्यर्थम् परस्य पितः प्रत्ययस्यैव सत्त्वादिति चेन्न । प्रत्य-
यात्पूर्वं एव उदात्तो यथास्यात्संघातो मा भूदित्यर्थं प्रत्ययादित्यस्याऽऽवश्यं सत्त्वात् ।

नचोदात्तत्वादीनामज्धर्मत्वेन, पितीति सप्तम्या निर्दिष्टपरिभाषोपस्थित्या च
अलोऽन्त्यपरिभाषया अचोऽन्त्यस्यैव भविष्यतीति वाच्यम् । स्वरविधौ संघातः
कार्यादित्यस्यापि ज्ञापनेनाऽलोऽन्त्यपरिभाषायाः स्वरविधावप्रवृत्तेः । अत एव 'कर्षा-
त्वत' इति सूत्रेऽन्तग्रहणं चरितार्थमिति ।

नन्वेवमपि प्रत्यये पिति इत्येवोच्यतां पूर्वग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न, "सौवर्यः
सप्तम्यस्तदन्तसप्तम्यः" इति ज्ञापनार्थत्वात् तेन 'सर्वस्य सुपीत्यस्य' सुबन्त
स्य सर्वस्येत्यर्थात् सर्वप्रिय इत्यादौ स्वरसिद्धिः 'जिनत्यादिर्नित्य'मित्यत्र निद-
न्तस्य निदन्तस्येत्यथलाभश्चेत्यलम् ।

'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानव'दित्येतदत्र नेष्यते ।

ननु मरुत्वानित्यत्र "स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदिति" परिभाषया
तत्राऽकारस्याऽविद्यमानवत्वेन ह्रस्वान्तात्परत्वस्य मतुपि सत्त्वेन "ह्रस्वनुङ्भ्यां
मनुप्" इति स्वरापत्तिरत आह—'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदि'त्येतदत्र
नेष्यते इति ।

अयं भावः "नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु" इति सूत्रे
पृथिव्यादिपर्थुदाधो व्यर्थः उदात्तादेरज्धर्मतया पकारस्यैवादी सत्त्वेनाऽनुदात्तादि-
त्वाऽभावादिति तत्सामर्थ्येन स्वरविधाविति परिभाषा कल्प्यते, ततश्च पकारस्याऽ-
विद्यमानत्वेनाऽनुदात्तादित्वसत्त्वाद् "देवताद्वन्द्वेचे"ति प्राप्तप्रकृतिस्वरस्य निषेधप्राप्तौ
पर्थुदासः सार्थकः इति । एवञ्च ज्ञापकसाजात्यात् स्वरत्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यताके-
विधावेव स्वरविधावित्यस्य प्रवृत्त्या प्रकृते 'ह्रस्वनुङ्भ्या'मित्यस्य स्वरत्वव्याप्यधर्मा-
वच्छिन्नोद्देश्यताकत्वाऽभावात्परिभाषाऽप्रवृत्तौ मरुत्वानित्यत्र न स्वर इति ।

नच इषुमानित्यत्र ह्रस्वनुङ्भ्यामित्यस्याऽप्रवृत्तयेऽन्तोदात्तादित्यनुवृत्तेरावश्य-
क्तया अस्यापि स्वरत्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यताकत्वमिति वाच्यम् । स्वरत्व-

व्याप्यधर्माऽवच्छिन्नविषयाः प्रतिबन्धकं व्यञ्जनं न भवतीत्यर्थः (वोकारेणाऽन्तो-
दात्तत्वबुद्धेः प्रतिबन्धाऽसम्भवेऽपि ह्रस्वान्तत्वबुद्धेः प्रतिबन्धात् ह्रस्वबुद्ध्यामित्य-
स्याऽप्रवृत्तेः । अत एव बुद्धग्रहणं चारितार्थम् । अन्यथा ह्रस्वान्तत्वादेव सिद्धे तद्
व्यर्थं स्यादित्यलम् ।

कारकादत्तश्रुतयोरेवाशिषि—

ननु संज्ञायामनाचितादीनामित्यनेन कारकापरयोर्दत्तश्रुतयोरन्तोदात्तत्वे सिद्धे
कारकादिति सूत्रं व्यर्थं सन्नियमयति—“कारकत्तान्तस्यान्त उदात्तः आशिषि
संज्ञायांचेद् दत्तश्रुतयोरेव” । एवञ्च देवा एनं देयासुः, देवदत्तः प्रार्थितैर्देवै-
र्दत्तः इति विग्रहः विष्णुरेनम् श्रूयात् इति विष्णुश्रुतः आशिषि लिङ्कोटाविति विग्रहे
लिङ् उदाहरणे च ‘क्विच्त्तौच संज्ञायाम्’ इति आशिषि क्तः एवञ्च सूत्रे एवकार
ग्रहणं किमर्थमिति चेन्न—तदभावे आशिषि संज्ञायां दत्तश्रुतयोरन्त उदात्तश्चेत्तर्हि
कारकादेवेति विपरीतनियमस्यापत्तौ संश्रुत इत्यादौ अन्तोदात्ततानापत्तेः तदुक्तं मूले-
‘कारकावधारणं यथा स्यादत्तश्रुतावधारणं माभूत्’ इति ।

अयं भावः “यत्र एवकारस्ततोऽन्यत्र नियमः” इति सिद्धान्तः दत्तश्रुतयो-
रेवेति नियमे कारकस्यैवावधारणं भवति अर्थात् कारकात्परस्यान्यस्याशिषि संज्ञायां
चान्तोदात्तत्वं न भवति दत्तश्रुतयोस्तु कारकात्परयोरपि भवति गत्युपपदाभ्यां पर-
योरपि भवति । कारकादेवेति नियमे तु कारकात्परयोरेव संज्ञायामाशिषि दत्तश्रु-
तयोः स्यान्न गत्युपपदाभ्यां परयोः, कारकात्परस्य तु अन्यस्यापि अन्तोदात्तत्वं
स्यात् एवञ्च संश्रुतो विश्रुत इत्यत्र न स्यादिष्यते चान्तोदात्तत्वमिति ।

नन्वस्मिन् सूत्रे कारकग्रहणं किमर्थं गतिकारकोपदादित्यतः कारकग्रहणाऽनु-
वृत्त्यैव सिद्धेरिति चेन्न । तथा सति “एकयोगानदिष्टानां सहवप्रवृत्तिः
सहैवनिवृत्तिः” इति न्यायेन गतिकारकोपपदानां त्रयाणामपि, अनुवृत्त्यापत्तौ
त्रयाणामपि नियमापत्त्या रामायणपाठस्य भावित्वे दृष्टव्यवहारे “सम्भूयादिति
सम्भूतो रामायणः” इत्यत्र नियमेन अन्तोदात्तत्वव्यावृत्त्याऽपरोः ।

दत्तश्रुतयोः किमिति—एतदभावे “तृतीया कर्मणि” एतस्यापि नियमः
स्यादिति देवपालित इत्यत्र तृतीयाकर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरो न स्यात् । अस्मा-
न्नियमादत्र संज्ञायामनेन न भवतीति भावः ।

आशिषि किमिति—अनाशिषि नियमो माभूत् देवैः खाता देवखाता इवमु-

विशेषस्य संज्ञेयम् । आशिष्येवेत्येवमत्रेष्टो नियम इति । आशिष्येवेत्येवमपीत्यर्थः । तेनानाहतो नदति देवदत्त इत्यत्र न भवति । आशिषोऽप्रतीतेः । उभयविधनियमे प्रमाणन्तु “कारकादत्तश्रुतयोरनाशिषि प्रतिषेधो वक्तव्यः अनाहतो नदति देवदत्तः सिद्ध्यन्तु मयनियमात् उभयतो नियमः कश्चिद्यते” इति भाष्यमेव अनाहतो नदति देवदत्तः इत्यत्र धनञ्जयसम्बन्धिनः शङ्खविशेषस्य देवदत्त इति संज्ञा शङ्खविशेषस्य यत्र संज्ञा तत्र देवा एनं देयासुरित्यर्थो न प्रतीयते इति तत्तात्पर्यम् । उदाहरणे च देवदत्त इति न शङ्खस्य संज्ञा अपि तु कस्यचित् पुंस इति भवति आशिषः प्रतीतिरिति तत्त्वम् ।

हस्तरहितवेदाध्ययनस्य किं फलमित्यत आह—

हस्तहीनन्तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।

ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥

हस्तसहितवेदाध्ययनस्य किं फलमित्यत आह—

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।

ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ।

अथ पाणिनीयशिक्षापाठस्य फलमाह—

त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत् प्रयतश्च सदा द्विजः ।

स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानतुलश्च सुखं समश्नुते दिवीति दिवोति ।

इति श्रीविश्वेश्वरश्वा शर्मविरचिता व्याकरणशास्त्रि-प्रथमखण्डस्य

सपरिशिष्ट-स्वरवैदिकप्रक्रियाप्रश्नोत्तरी समाप्ता ।

विश्वेश्वरपुरीमध्ये श्रीविश्वेश्वरशर्मणा ।

परीक्षार्णवपाराय कृता प्रश्नोत्तरी तरिः ॥

इति शुभं भूयात् ।

ॐ प्रौढमनोरमा ॐ

शब्दरत्न-भैरवी-भावप्रकाश-सरलाटीकात्रयसहित-

अद्यपि मनोरमा शब्दरत्न के अन्य २ संस्करण मेरे यहां से प्रकाशित हो चुके हैं तथापि श्री पं० वैद्यनाथ बालभट्टपायगुण्डेकृत भावप्रकाश के साथ इस ग्रन्थ को प्राप्त करने की आप लोगों की महत् अमिलावा को देख कर ही यह नवीन संस्करण प्रकाशित किया गया है। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् व अनेक संस्कृत ग्रन्थ के सम्पादक श्रीमान् पं० गोपालशास्त्री नेने जी कृत भावप्रकाश के साथ सरला टीका से तो इस ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। विशेष क्या आप ग्रन्थ देखकर स्वयं इसका अनुभव कर सकते हैं।

अव्ययीभावपर्यन्त का मूल्य ६) मात्र

प्रौढमनोरमाशब्दरत्नप्रश्नोत्तरावली

तथा नव्य-व्याकरण-शास्त्री प्रश्नावली ।

स्वरवैदिकप्रकरण सिद्धान्तकौमुदी, वैयाकरणभूषणसार, परिभाषेन्दुशेखर, महाभाष्य के २० वर्षों के प्रश्नपत्रों से सुसज्जित ।

इस में कालेज की परीक्षाओं के २० वर्ष के प्रश्नों के उत्तर परीक्षोपोगी सरल रीति से किये गये हैं। साथ में वैयाकरणभूषण, स्वरवैदिक, महाभाष्य परिभाषेन्दु-शेखर के २० वर्ष के प्रश्न पत्र भी दिये गये हैं। इसके लेने से मनोरमारत्नविवेक आदि तथा शास्त्रीपरीक्षाप्रश्नावली इत्यादि किसी की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

प्रथम खण्ड १-) द्वितीय तृतीय खण्ड १=) तथा १-३ खण्ड १=)

शिशुपालवधम्

‘सान्वय’-‘सर्वङ्गषा’-सुधाव्याख्याद्वयोपेतं १-२ सर्ग

विद्यार्थियों के उपयुक्त इस संस्करण के प्रत्येक बलोकों में क्रमशः अवतरण-श्लोक-ग्रन्थ-मञ्जिनाथकृत सर्वङ्गषाव्याख्या-सुधाव्याख्या-कोश-समासादि-व्याकरण-वाच्यपरिवर्तन-तात्पर्यार्थ-हिन्दीभाषार्थ-उपयुक्त टिप्पणियां-संक्षिप्त संस्कृत-हिन्दी कथासार-प्रश्नपत्र आदि विषय दिये गये हैं। विद्यार्थियों के उपयुक्त इतना सुन्दर संस्करण दूसरा नहीं छपा।

मूल्य भी सब संस्करणों से सस्ता १ से २ सर्ग का ॥१) है

प्रकाशित हो गया !

प्रकाशित हो गया !

वेणीसंहारनाटकम्—

‘प्रबोधिनी’—‘प्रकाश’ संस्कृत-हिन्दी टीकाद्वयोक्तम् ।

गवर्धनेन्द्र संस्कृत, काशी, बनारस, हिन्दी प्रथम खण्ड में तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वितीय पत्र में निर्धारित यह “वेणीसंहार” का नूतन संस्करण परीक्षार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी हुआ है ।

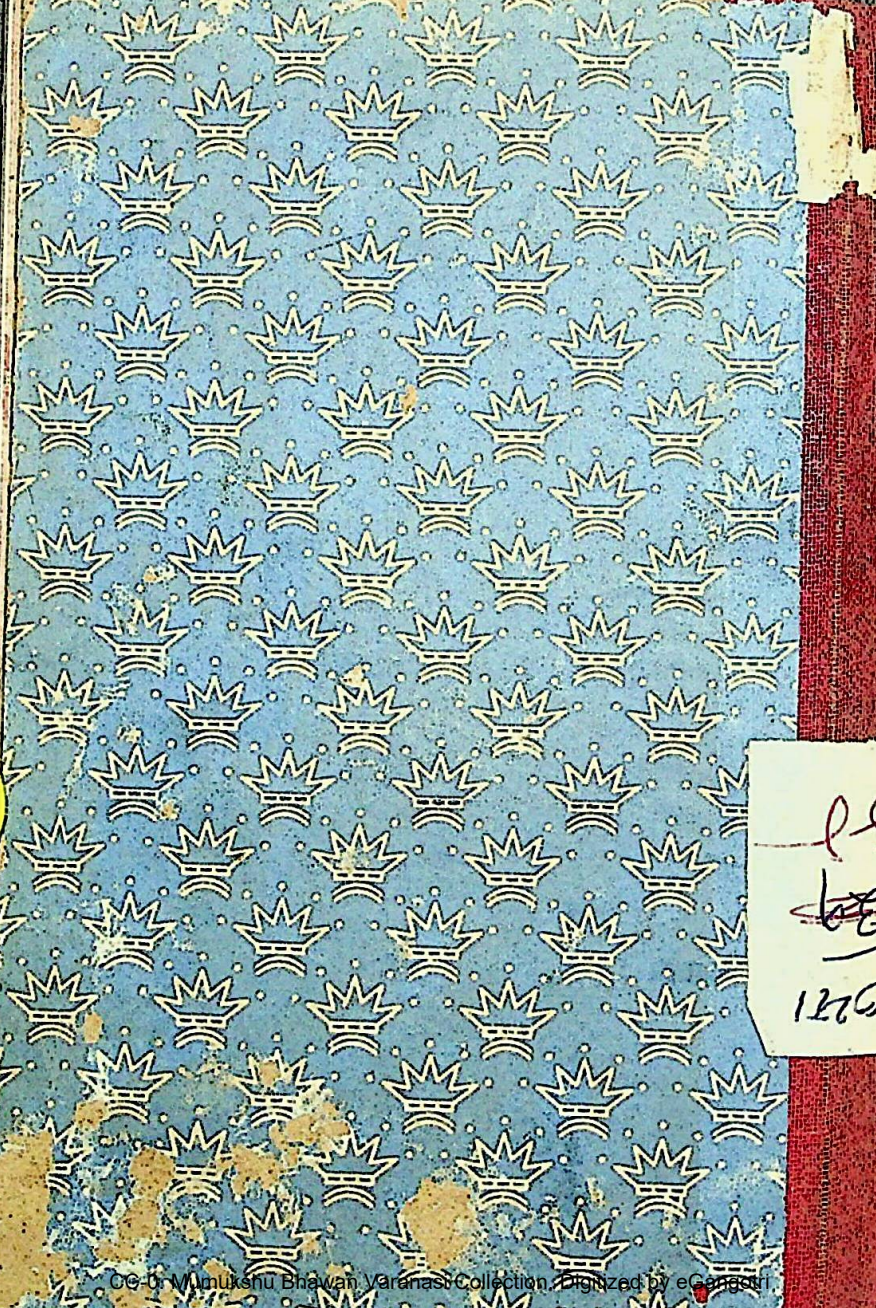
जब तक इस नाटक के ऊपर परीक्षार्थियों के उपयुक्त इस तरह की विस्तृत और सरल कोई व्याख्या नहीं हुई थी । परीक्षा में आये हुए प्रश्नों का समीचीन उत्तर देने में कोमलमति वाले परीक्षार्थियों की अत्यन्त कठिनाइयों को देखकर ही हमारे इस ग्रन्थके टीकाकारों ने सभी नवीन व प्राचीन प्रकाशित टीकाओं का गुण-दोष निवेचन करके नाटकीय व्याख्या के तत्त्व पर श्लोकान्वय, विग्रह, पर्याय, सुन्दर अर्थ, भावार्थ, अलङ्कार तथा कोषादि प्रमाण से शब्दान्तर देकर समन्वय करते हुए प्रबोधिनी और प्रकाश (संस्कृत-हिन्दी) टीकाओं से, श्लोक, प्राकृत तथा गद्य को इस तरह समझाया है कि, शास्त्री क्या मध्यमा के सुकोमल विद्यार्थी भी स्वयं इससे ज्ञान प्राप्त कर सके हैं । इसमें प्रत्येक पत्र का लक्षण तथा नाटक, चरित्र, काव्य और महाकाव्य आदि का लक्षण भी जगह २ पर दे दिया गया है जो कि आज तक किसी भी अन्य संस्करणों में नहीं पाया जाता । इतनाही नहीं विस्तृत ‘भूमिका’ में सम्पूर्ण ग्रन्थ की समालोचना कर के सभी अङ्क का संक्षिप्त ‘कथालार’ भी अलग लिख दिया गया है, जिससे संक्षेप में इस ग्रन्थ का कथानक समझने में बड़ी सुगमता हो गई है । किं बहुना, जिन स्थलों पर अन्य टीकाकारों ने ग्रन्थाशय न समझ कर मन मग्नन्त पाठ और टीका कर दी है उन स्थलों को अलि भांति सप्रमाण विस्तृत रूपसे ‘कविवर-भट्टनारायण’ के यथार्थ भाष्य का वर्णन कर के समन्वय किया गया है ।

‘हाथ बंगन को आरसी क्या’ हमारा नम्र निवेदन है कि वेणीसंहार खरीदने के पूर्व इन प्रबोधिनी और प्रकाश टीकाओं को देख कर ही आप पुस्तक खरीदने का कष्ट करे अन्यथा बाद पश्चात्ताप से क्या लाभ होगा ।

मूल्य भी बहुत अल्प १।) मात्र

प्राप्तिस्थानम्—

चौखम्बा—संस्कृत-पुस्तकालय, बनारस सिटी ।



1271